

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये



वर्ष
१४

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या
७

अर्जुनको भगवान् शिवकी महिमा बताते व्यासजी



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



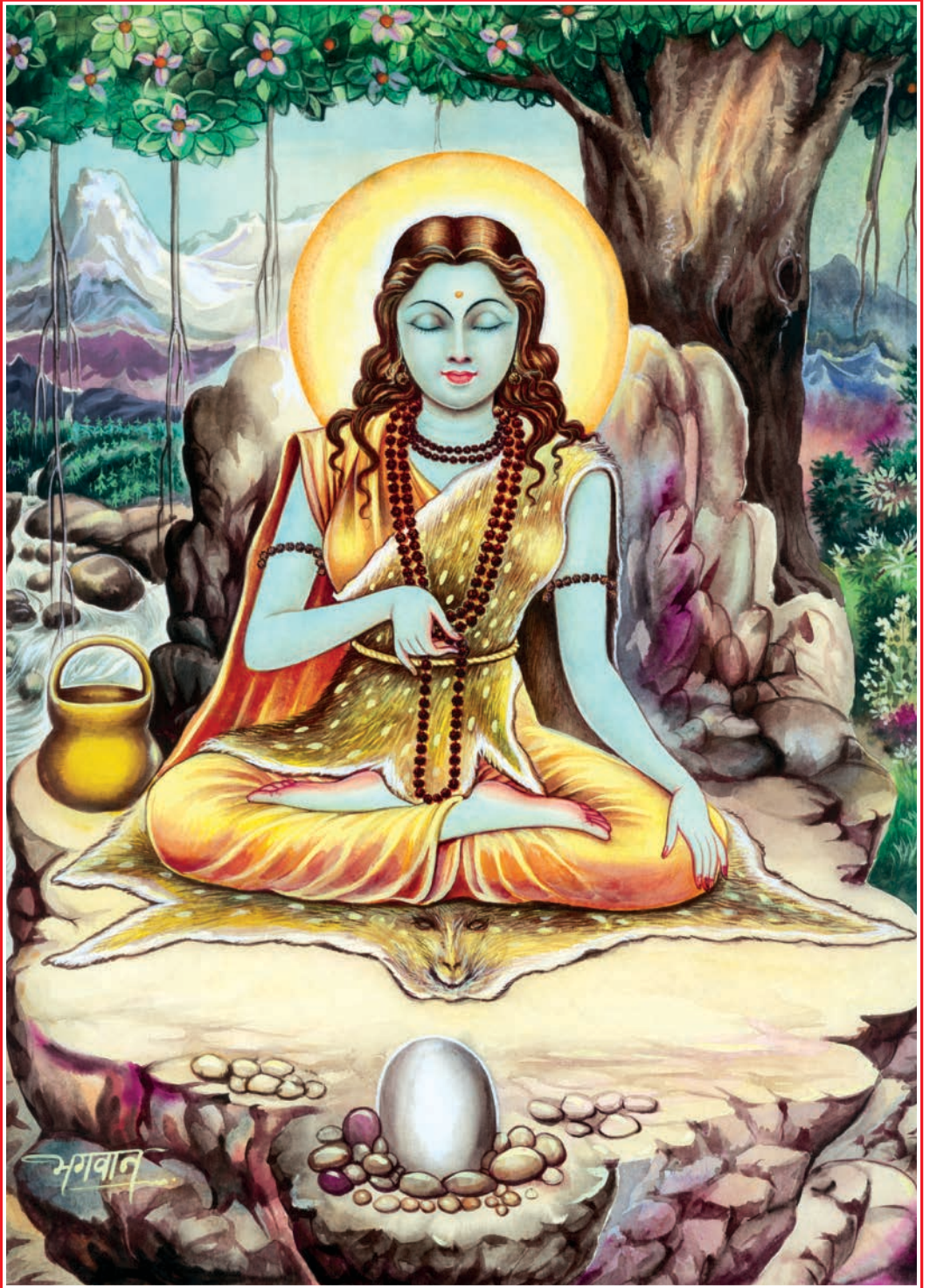
By

Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



KAPWING



पराम्बा भगवती श्रीपार्वतीकी शिवाराधना

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



आख्यानकानि भुवि यानि कथाश्च या या यद्यत्प्रमेयमुचितं परिपेलवं वा ।
दृष्टान्तदृष्टिकथनेन तदेति साधो प्राकाशयमाशु भुवनं सितरश्मिनेव ॥

वर्ष

१४

गोरखपुर, सौर श्रावण, वि० सं० २०७७, श्रीकृष्ण-सं० ५२४६, जुलाई २०२० ई०

संख्या

७

पूर्ण संख्या ११२४

पार्वतीजीकी शिवाराधना

उर धरि उमा प्रानपति चरना । जाइ बिपिन लागीं तपु करना ॥
अति सुकुमार न तनु तप जोगू । पति पद सुमिरि तजेउ सबु भोगू ॥
नित नव चरन उपज अनुरागा । बिसरी देह तपहि मनु लागा ॥
संबत सहस मूल फल खाए । सागु खाइ सत बरष गवाँए ॥
कछु दिन भोजनु बारि बतासा । किए कठिन कछु दिन उपबासा ॥
बेल पाती महि परइ सुखाई । तीनि सहस संबत सोइ खाई ॥
पुनि परिहरे सुखानेउ परना । उमहि नामु तब भयउ अपरना ॥
देखि उमहि तप खीन सरीरा । ब्रह्मगिरा भै गगन गभीरा ॥

भयउ मनोरथ सुफल तव सुनु गिरिराजकुमारि ।

परिहरु दुसह कलेस सब अब मिलिहहि त्रिपुरारि ॥

[श्रीरामचरितमानस]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर श्रावण, वि० सं० २०७७, श्रीकृष्ण-सं० ५२४६, जुलाई २०२० ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१- पार्वतीजीकी शिवाराधना	३	१६- 'सेइये सनेहसों बिचित्र चित्रकूट सो'	३४
२- कल्याण	५	१७- महात्मा सदाशिव ब्रह्मेन्द्र [संत-चरित]	
३- शिव-महिमा [आवरणचित्र-परिचय]	६	(श्रीरामलालजी श्रीवास्तव)	३५
४- यज्ञोपवीत (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ..	७	१८- मानव-जीवनमें सुख और दुःख	
५- मान और विवेक		(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	३८
(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीदयानन्द गिरिजी महाराज)	८	१९- लक्ष्मीका वास कहाँ है ?	३९
६- संसारकी सुखमयता		२०- संत-वचनमृत (वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य	
(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ...	१२	श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे)	४०
७- हनुमानजीद्वारा रावणकी चिकित्सा करनेका यत्न		२१- गोमाताके प्रति कृतज्ञ भाव रखें [गो-चिन्तन]	
(मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय)	१३	(श्रीअशोकजी कोठारी)	४१
८- 'बार-बार नहीं पाइये, मनुष-जनमकी मौज' [साधकोंके प्रति]		२२- साधनोपयोगी पत्र —	
(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१६	(१) जीवनको भगवत्परायण बनायें	४३
९- गोस्वामी तुलसीदासजीकी नाम-निष्ठा		(२) सकाम और निष्काम भक्ति	४४
(विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीदीनेशचन्द्रजी उपाध्याय)	१८	२३- व्रतोत्सव-पर्व [भाद्रपदमासके व्रत-पर्व]	४५
१०- राम और नाम	२०	२४- कृपानुभूति	४६
११- श्रावणमास और उसके व्रत-पर्वोत्सव	२१	हमारी नैया पार लगी	४६
१२- राग-द्वेष (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज,		२५- पढ़ो, समझो और करो	४७
अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ)	२४	(१) एक भारतीय भिखारीका आदर्श चरित्र	४७
१३- महामारी और हमारी स्वास्थ्य-रक्षक सेना		(२) खुदा आप-जैसा ही कोई होगा	४७
(श्रीहनुमानप्रसादजी गोयल)	२६	(३) श्वेतकुष्ठनाशक गंगाजल	४८
१४- भगवान् शिवकी शरणागतिसे परम कल्याणकी प्राप्ति	२९	(४) भगवान्की अन्तर्वाणी	४९
१५- 'अब चित चेत चित्रकूटहि चलु' [तीर्थ-दर्शन]		२६- मनन करने योग्य	५०
(डॉ० श्रीअनुजप्रतापसिंहजी, डी०लिट०)	३०	करत-करत अभ्यासके जड़मति होत सुजान	५०

चित्र-सूची

१- अर्जुनको भगवान् शिवकी महिमा बताते व्यासजी .. (रंगीन) आवरण-पृष्ठ	५- धृतराष्ट्रको समझाते महात्मा विदुर	(इकरंगा)	२४
२- पराम्बा भगवती पार्वतीकी शिवाराधना... .. (") ... मुख-पृष्ठ	६- नन्दबाबाको गौओंकी महिमा बताते		
३- अर्जुनको भगवान् शिवकी महिमा बताते व्यासजी (इकरंगा)	श्रीकृष्ण	(")	४२
४- श्रावणमासमें शिव-पूजन	७- वरदराजपर भगवती सरस्वतीकी कृपा	(")	५०

एकवर्षीय शुल्क

₹ २५०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनंद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट् जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

विदेशमें Air Mail }
शुल्क }

वार्षिक US\$ 50 (३,000)
पंचवर्षीय US\$ 250 (15,000)

{ Us Cheque Collection
{ Charges 6\$ Extra

पंचवर्षीय शुल्क

₹ १२५०

संस्थापक — ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक — नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक — राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक — डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : gitapress.org

e-mail : kalyan@gitapress.org

☎ 09235400242 / 244

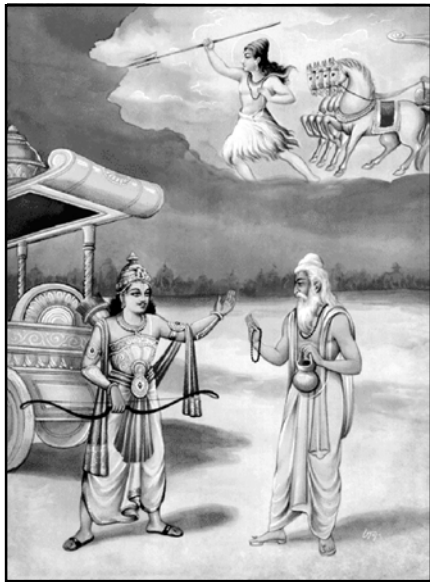
सदस्यता-शुल्क — व्यवस्थापक — 'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस — २७३००५, गोरखपुर को भेजें ।

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर Kalyan या Kalyan Subscription option पर click करें ।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा book.gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें ।

याद रखो—साधकका जिस मार्गमें विश्वास हो, जिस मार्गमें उसे सुविधा प्रतीत होती हो, निर्देशकने जो मार्ग बतलाया हो, उसको उसीपर श्रद्धाके साथ धैर्य धारण करके चलना चाहिये। अभ्यास करते-करते वह अपने-आप ही अभ्यासकी परिपक्वता होनेपर ‘रुचि’ और ‘रति’के स्तरपर पहुँच जायगा और तब वह अपनेको साध्यके समीप जानकर परम प्रसन्न होगा; परंतु जो साधक क्षण-क्षणमें मार्ग-परिवर्तन करेगा, उसका तो अभ्यास ही सिद्ध होना कठिन हो जायगा। ‘रुचि’ और ‘रति’ की बात तो अलग रही। **‘शिव’**

शिव-महिमा



महाभारतके महासमरमें गाण्डीवधारी अर्जुन कौरवोंका संहार कर रहे थे। जिधर श्रीकृष्ण रथको घुमाते थे, उधर अर्जुनके बाणोंसे बड़े-बड़े महारथी तथा विशाल सेना मारी जाती थी। द्रोणाचार्यकी मृत्युके पश्चात् कौरव-सेना भाग खड़ी हुई। इसी बीच अचानक महर्षि वेदव्यासजी स्वेच्छासे घूमते हुए अर्जुनके पास आ गये। उन्हें देखकर जिज्ञासावश अर्जुनने उनसे पूछा—‘महर्षे! जब मैं अपने बाणोंसे शत्रुसेनाका संहार कर रहा था, उस समय मैंने देखा कि एक तेजस्वी महापुरुष हाथमें त्रिशूल लिये हमारे रथके आगे-आगे चल रहे थे। सूर्यके समान तेजस्वी उन महापुरुषका पैर जमीनपर नहीं पड़ता था। त्रिशूलका प्रहार करते हुए भी वे उसे हाथसे कभी नहीं छोड़ते थे। उनके तेजसे उस एक ही त्रिशूलसे हजारों नये-नये त्रिशूल प्रकट होकर शत्रुओंपर गिरते थे। उन्होंने ही समस्त शत्रुओंको मार भगाया है। किंतु लोग समझते हैं कि मैंने ही उन्हें मारा और भगाया है। भगवन्! मुझे बताइये, वे महापुरुष कौन थे?’

कमण्डलु और माला धारण किये हुए महर्षि वेदव्यासने शान्तभावसे उत्तर दिया—‘वीरवर! प्रजापतियोंमें प्रथम, तेजःस्वरूप, अन्तर्यामी तथा सर्वसमर्थ भगवान् शंकरके अतिरिक्त उस रोमांचकारी घोर संग्राममें अश्वत्थामा, कर्ण और कृपाचार्य आदिके रहते हुए कौरवसेनाका

विनाश दूसरा कौन कर सकता था! तुमने उन्हीं भुवनेश्वरका दर्शन किया है। उनके मस्तकपर जटाजूट तथा शरीरपर वल्कल वस्त्र शोभा देता है। भगवान् भव भयानक होकर भी चन्द्रमाको मुकुटरूपसे धारण करते हैं। साक्षात् भगवान् शंकर ही वे तेजस्वी महापुरुष हैं, जो कृपा करके तुम्हारे आगे-आगे चला करते हैं।’

एक बार ब्रह्माजीसे वरदान प्राप्त करके तीन असुर—तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली आकाशमें विमानके रूपमें नगर बसाकर रहने लगे। घमण्डमें फूलकर ये भयंकर दैत्य तीनों लोकोंको कष्ट पहुँचाने लगे। देवराज इन्द्रादि उनका नाश करनेमें सफल न हो पाये। देवताओंकी प्रार्थनापर भगवान् शंकरने उन तीनों पुरोंको भस्म कर दिया। वीरवर अर्जुन! उनका भोलापन सुनो—‘जिस समय दैत्योंके नगरोंको महादेवजी भस्म कर रहे थे, उस समय पार्वतीजी भी कौतूहलवश देखनेके लिये वहाँ आयीं। उनकी गोदमें एक बालक था। वे देवताओंसे पूछने लगीं—‘पहचानो, ये कौन हैं?’ इस प्रश्नसे इन्द्रके हृदयमें असूयाकी आग जल उठी और उन्होंने जैसे ही उस बालकपर वज्रका प्रहार करना चाहा, तत्क्षण उस बालकने हँसकर उन्हें स्तम्भित कर दिया। उनकी वज्रसहित उठी हुई बाँह ज्यों-की-त्यों रह गयी। अब क्या था, बाँह उसी तरह ऊपर उठाये हुए इन्द्र दौड़ने लगे। महान् कष्टसे पीड़ित होकर वे ब्रह्माजीकी शरणमें गये। ब्रह्माजीको दया आ गयी। वे इन्द्रको लेकर शंकरजीके पास पहुँचे। ब्रह्माजी शंकरजीको प्रणाम करके बोले—‘भगवन्! आप ही विश्वका सहारा तथा सबको शरण देनेवाले हैं। भूत और भविष्यके स्वामी जगदीश्वर! ये इन्द्र आपके क्रोधसे पीड़ित हैं, इनपर कृपा कीजिये।’

सर्वात्मा महेश्वर प्रसन्न हो गये। देवताओंपर कृपा करनेके लिये ठठाकर हँस पड़े। सबने जान लिया कि पार्वतीजीकी गोदमें चराचर जगत्के स्वामी भगवान् शंकरजी ही थे। वे सभी मनुष्योंका कल्याण चाहते हैं, इसलिये उन्हें शिव कहते हैं। वेद, वेदांग, पुराण तथा अध्यात्मशास्त्रोंमें जो परम रहस्य है, वह भगवान् महेश्वर ही हैं। अर्जुन! यह है महादेवजीकी महिमा!

arma] MADE WITH LOVE BY Avinash/Shi

यज्ञोपवीत

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

यज्ञ और उपवीत—इन दो शब्दोंसे यज्ञोपवीत शब्द बना है। वैदिक यज्ञोंको करनेका अधिकार यज्ञोपवीत-संस्कारसे प्राप्त होता है। यज्ञोपवीत इस बातका सूचक है कि यह द्विजाति है, इसे वेदाध्ययन एवं वैदिक कर्मका अधिकार प्राप्त है। द्विजाति पुरुष वैदिक कर्मोंमें अधिकार-प्राप्तिके लिये उपनयन-संस्कारद्वारा यज्ञोपवीत धारण करता है। इसीलिये यज्ञोपवीतका एक नाम ब्रह्मसूत्र अर्थात् वेद (ब्रह्म)–के अधिकारका सूचक है।

यज्ञोपवीत वेदाधिकारसूचक है। वेदका मुख्य मन्त्र है—वेदमाता गायत्री। गायत्रीमें २४ अक्षर हैं। यह मन्त्र चारों वेदोंमें है। चारों वेदोंके गायत्री-मन्त्रोंकी कुल अक्षर-संख्या ९६ हुई। इससे यज्ञोपवीत-सूत्र ९६ अंगुलका होता है। सामवेदके छान्दोग्य-परिशिष्टके अनुसार तत्त्व २५, गुण ३, तिथि १५, वार ७, नक्षत्र २७, वेद ४, काल ३, मास १२—इन सबके योग ९६ अंगुलको यज्ञोपवीत-सूत्रका परिमाण रखकर उसे भुवनात्मक प्रतीक माना गया है। उपनीत होनेवाले व्यक्तिको ९६ सहस्र वैदिक ऋचाओंका अधिकार प्राप्त है—यह भी यज्ञोपवीतका सूत्र ९६ अंगुल होनेमें प्रधान हेतु है।

यज्ञोपवीतमें तीन सूत्र त्रिगुणित किये गये होते हैं। त्रिगुणसे निर्मित जगत्में वैदिक त्रयीके आधारसे ऋणत्रय (देव-ऋण, ऋषि-ऋण, पितृ-ऋण)-से मुक्त होना हमारा कर्तव्य है—यह त्रिगुणित तीनों सूत्र बतलाते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त विधिसे निर्मित यज्ञोपवीत नौ तन्तुवाला बन जाता है। इन नौ तन्तुओंमें ॐकार, अग्नि, अनन्त, चन्द्र, पितृगण, प्रजा, वायु, सूर्य, सर्वदेवका निवास है। इनसे उन देवताओंके गुण आते हैं।

यज्ञोपवीतमें चार ग्रन्थि नहीं होती। उसमें अपने प्रवरके अनुसार १, २, ३ या ४ गाँठ होनी चाहिये। यह प्रवरकी सूचक है। इन गाँठोंसे नीचे पहले ब्रह्मग्रन्थि होती है, जो सूचित करती है कि वेदाधिकार प्राप्त

करनेका तात्पर्य भी सर्वमय—सबमें व्याप्त परम ब्रह्मको प्राप्त करना ही है।

शास्त्रकारोंने दाहिने कानमें आदित्य, वसु, रुद्र, वायु, तथा अग्नि आदि देवताओंका निवास माना है।

आदित्या वसवो रुद्रा वायुरग्निश्च धर्मराट् ।

विप्रस्य दक्षिणे कर्णे नित्यं तिष्ठन्ति देवताः ॥

इसलिये शौचादिके समय जबकि हम अपवित्र दशामें होते हैं, वेदके पवित्र अधिकारके प्रतीक यज्ञोपवीतका दाहिने कानपर चढ़ा लेते हैं। उस समय उसकी पवित्रताकी रक्षा उस कर्णमें स्थित देवताओंद्वारा होती है—यही इसका भाव है। मनुष्यका हृदय वाम भागमें है—यज्ञोपवीतका उद्देश्य हम हृदयसे समझते—मानते हैं और मानेंगे, यह सूचित करता हुआ यज्ञोपवीत वाम कन्धेसे होता हुआ, हृदयपर होकर दाहिने आता है। यज्ञोपवीत वेदका सपवित्र प्रतीक है—अतः अपवित्र दशामें उसकी पवित्रता न रखी गयी हो, वह कर्णस्थित देवताओंको रक्षाके लिये न दिया गया हो तो अपवित्र माना जाता है, अतः बदला जाता है।

यज्ञोपवीत धारण करके जो संध्या, गायत्री-जप नहीं करता—वह अनुचित करता है। परंतु जो यज्ञोपवीत धारण ही नहीं करता, उसे तो वैदिक कर्मोंके करनेका अधिकार ही नहीं है। वह इन्हें करता है तो अनधिकार कार्यका दोषी होता है। इसलिये द्विजातिको यज्ञोपवीत धारण करना ही चाहिये।

गुणोंका धारण तथा अवगुणोंका त्याग तो सभीके लिये इष्ट है। जो द्विजाति हैं, उनके लिये भी तथा जो द्विजाति नहीं हैं उनके लिये भी।

गुणाधानके लिये तामसी पदार्थोंका त्याग करना उत्तम बात है। जहाँतक हो सके राजस पदार्थोंका भी त्याग करना चाहिये। इससे सात्त्विक गुणोंकी अभिवृद्धिमें सहायता मिलती है।

इस प्रकार लड़केके वचन सुनकर उसके पिताने पहलेसे और भी अधिक भला-बुरा सुना दिया और कहा कि 'तू मूर्खका मूर्ख ही रहा। अरे! तेरी बुद्धि भ्रष्ट करनेके लिये ही यह सारा किया गया है। तू समझता नहीं है, मान किसका है? तेरा मान कुछ नहीं है, तेरे कुल और बाप-

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

मेरेगा।' उसकी समझमें बात बैठ गयी। उसने कहा, 'देखो, सचमुच मेरे पिताजी बड़े बुद्धिमान् हैं, जो कि मुझे मरनेसे भी बचा रहे हैं और मेरा पाप भी धो रहे हैं तथा मुझे शिक्षा भी दे रहे हैं।'

पिताका पत्र लेकर लड़का ससुराल चला गया। ससुरालमें जानेके बाद कुछ दिन उसका दामादकी तरह स्वागत किया गया। बादमें उन्होंने कहा कि 'देखो, हमारे यहाँ बाजरा पकता है। उसकी रखवालीके लिये चिड़िया उड़ानी पड़ती है। खेतमें मचान हम बाँध देते हैं। अब आप खेतमें जाओ और हमारे खेतोंकी चिड़िया उड़ाओ।' पहली नौकरी तो उसको यही दी गयी। वह कवि तो था ही, इसलिये नौकरी भी करता और अपनी पुस्तक भी लिखता रहा। पासमें और दूसरोंके भी खेत थे। उन खेतवाले लड़कोंको भी कविता सुनाता, जिससे उसने उनको इतना लुभा दिया कि वे लड़के कहने लगे कि आप हमें यही कविता सुनाते रहा करो, आपके खेतोंकी रखवाली तो हम ही कर देंगे।' वह मचानपर बैठा-बैठा कविता रचने एवं पुस्तक लिखनेमें लगा रहता था। इस प्रकार होते-होते काफी दिन बीत गये।

जब दूसरी फसल आयी, तो उसकी घरवालीके बच्चा होनेवाला था। उसके ससुरालवालोंने कहा कि 'आप इस खर्चके जिम्मेवार हो और इसके लिये पाँच सौ रुपयोंकी जरूरत है', 'कहींसे भी पाँच सौ रुपये लाओ', तो लड़के ने कहा कि 'कहाँसे लाऊँ?' तो उन्होंने कहा कि 'यहाँके राजकुमारके पास जाओ, सबसे ज्यादा उसीके पास धन है। उसके पास आप अपनी कोई वस्तु गिरवी रख करके आवश्यक धन ले आओ।' उसने सोचा कि 'मेरे पास और तो कोई वस्तु नहीं है। परंतु मैं कवि हूँ, मैंने एक ग्रन्थ रचा हुआ है, जिसको मैं गिरवी रख देता हूँ। तबतक इस ग्रन्थका प्रचार नहीं करूँगा, जबतक रुपये वापस नहीं दे दूँगा।' ऐसा विचार करके वह राजाके पास गया और कहा कि 'महाराज, मेरे ग्रन्थका यह एक श्लोक आप रख लें और इसके आप कृपया मुझे पाँच सौ रुपये दे दीजिये। जबतक आपके पाँच सौ रुपये वापस नहीं लौटाऊँगा, तबतक मैं इस ग्रन्थका प्रचार नहीं करूँगा।' श्लोकका भावार्थ इस प्रकार है कि 'कोई भी कार्य सफल हो सके

नहीं करना चाहिये, कारण कि अविवेक अर्थात् बिना सोच-विचारके झटपट प्रकृतिके जोशसे जो काम किया जाता है, वह परम आपत्तियों (आफतों)-का घर होता है। जो मनुष्य विवेकसे सोच-विचार करके कार्य करता है, उसको सारी सम्पत्तियाँ मिलती हैं।' श्लोक तो अपने ढंगका संस्कृतमें है। अविवेकका अर्थ है बिना विचार किये। विवेक उसे कहते हैं कि जो वस्तु जैसी है, उसको वैसा समझ लेना, जबकि अविवेकमें जो वस्तु जैसी है वैसी तो समझमें आती नहीं तथा कुछ और ही समझमें आती है। राजाने कहा, 'ठीक है; श्लोक तो बहुत बढ़िया है।' पढ़कर उसने सोचा कि हम राजा हैं तथा तलवारके धनी हैं। झटपट कहीं किसीपर क्रोध (गुस्सा) आनेपर तलवार चला देते हैं। इसलिये इस श्लोकको तलवारकी म्यानके शुरुमें रख देते हैं। जब तलवार निकालें तो पहले यह श्लोकका पर्चा गिरे और गिरते ही झटपट हमें सोचनेके लिये चौकस कर दे कि ठहरो, जरा सोचकर काम करना, कहीं ऐसे ही नहीं दूसरेको मार डालना।

राजाने वह श्लोक तलवारकी म्यानमें रख लिया और उसको पाँच सौ रुपये दे दिये। वह पाँच सौ रुपये लेकर घर आ गया और वे रुपये घरवालोंको दे दिये। उसकी घरवालीने पुत्रको जन्म दिया और उसने अपनी ससुरालवालोंसे कहा कि 'आप अपना सब सामान वगैरह लाकर, जो कुछ बेटेका संस्कार करना है, वह करो।'

उस समय मुसलमानोंका राज्य था। जितने भी राजपूत राजा थे, ये सब उनके अधीन थे। कहीं काबुलमें लड़ाई हो रही थी, तो दिल्ली दरबारसे आज्ञा मिली कि गुजरात (काठियावाड़)-का राजा भी फौज लेकर काबुल पहुँच जाय। राजा सेनाके साथ उस आज्ञाको पाकर युद्धक्षेत्रमें पहुँच गया। राजा चार-पाँच सालतक उधर ही रहा तथा आ नहीं सका। जब यह लड़ाईमें गया तो इस राजाका लड़का तीन सालका था। वह चार-पाँच सालमें जवान-जैसा हो गया, कारण कि राजकुमार तो था ही और उसको खाने-पीनेकी सब प्रकारकी मौज थी। परंतु उसकी माताका मोह होनेसे वह अपनी माताके साथ ही सोता था। पाँच वर्ष बाद

अब इस कथामें सीखनेकी क्या बात है ? यही समझना है। सहसा कोई कार्य नहीं करना चाहिये। सुखको पानेके लिये या थोड़ा दुःख पड़नेपर मनुष्यका अपने अन्दर मान भड़कता है। उस समय उसकी समझमें नहीं आता कि मेरे अन्दर एक राक्षस घुसा हुआ है, जो दिखायी तो नहीं देता। ऐसी अवस्थामें यदि एक क्षणभरके लिये सोचा जाय, तो पता लगेगा कि यह मानरूपी राक्षस क्या करवाना चाहता था ? इसलिये जीवनमें सहसा कोई कार्य नहीं कर बैठना चाहिये। सोचकर कार्य करनेकी आदत डाल लें। यदि थोड़ा-सा भी सोचकर कार्य करनेकी आदत डालेंगे, तो आपको पता लग जायगा कि यह मानरूपी बन्धन ही बाँधनेवाला था। राजाके अन्दर भी राग, द्वेष, संशय काम कर रहे थे। वह सारा अविद्याका जाल था, जिसके कारण राजा अपने लड़के एवं स्त्रीको मारने जा रहा था, वह एक क्षणभरके लिये उस श्लोकवाले पत्रके सम्मुख आ पड़नेपर इतना सोच गया कि जरा तो ठहर जाऊँ, थोड़ा विवेक तो कर लूँ अर्थात् पता तो कर लूँ कि असलियत क्या है ? इसीका नाम विवेक है।

संसारकी सुखमयता

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

संसार दुःखमय भी है तथा संसार दुःखलेशशून्य सर्वथा आनन्दमय भी है। जहाँ भगवान्की विस्मृति है, जहाँ केवल विषय-भोगोंके प्राप्त करनेकी इच्छा, विषय-भोगोंसे सुखकी आशा तथा विषय-भोगोंमें प्रीति है, वहाँ संसार सर्वथा 'दुःखमय' है और जहाँ संसारकी विषयरूपमें अप्रीति, विषयोंमें सुखबुद्धिका अभाव, भगवत्प्रीत्यर्थ ही विषय-सेवन, भगवल्लीलाकी पूर्तिके लिये ही भोग-स्वीकार तथा संसारमें सर्वत्र सर्वथा भगवान्की सन्निधिका अनुभव है, वहाँ संसार 'परमानन्दमय' है।

वस्तुतः संसार आनन्दमय भगवान्की ही अभिव्यक्ति है तथा यह भगवान्की ही आनन्दमयी लीला है, इसलिये यह स्वरूपतः आनन्दमय ही है। दुःख तो सर्वत्र भगवान्की अनुभूतिके तथा सर्वथा भगवान्की स्मृतिके अभावमें ही है। वस्तुतः सर्वत्र मंगलमय आनन्दमय भगवान्की सत्ता है, मंगलमय आनन्दमय भगवान्का आनन्द है तथा मंगलमय आनन्दमय भगवान्के सौन्दर्यका प्रसार है। भगवान्के इस मंगलमय आनन्दमय स्वरूपमें जिनकी दृष्टि है, प्रीति है और प्रतिष्ठा है, उनके लिये संसार आनन्दमय है एवं वे ही संसारमें भगवान्के आनन्दमय स्वरूपका अनुभव करते हैं। कोई भी बाह्य स्थिति न तो उनके इस आभ्यन्तरिक नित्य आनन्दको हटा सकती है और न किसीको बाह्य स्थिति यह आनन्द प्राप्त ही करा सकती है।

संसारके विषय-भोगोंमें जिनकी आसक्ति नहीं, कामना नहीं, ममता नहीं तथा भगवान्‌में जिनकी आसक्ति, ममता तथा भगवत्-प्राप्ति या प्रीतिकी कामना है, वे विषय-भोगोंमें रहते हुए उनके स्पर्शसे अलिप्त रहते हैं और वह विषय-भोग भगवान्‌की पूजाकी सामग्री—भगवत्कार्यके साधन बनकर उन्हें नित्य

भगवान्का सुख-संस्पर्श कराता रहता है। यों नित्य ब्रह्म-संस्पर्शको प्राप्त पुरुष नित्य ब्रह्म-सुखमें— भगवत्प्रेमानन्दमें निमग्न रहते हुए ही संसारमें भगवान्का कार्य करते रहते हैं।

इसके विपरीत बाहरसे जो विषय-भोगोंके त्यागी-से दीखते हैं और बाहरी त्यागके चिह्नोंको भी धारण करते हैं, पर जिनके मनमें विषयासक्ति, विषय-कामना तथा संसारके प्राणी-पदार्थोंमें इन्द्रियसुखार्थ ममता है, वे दुःखोंसे मुक्त नहीं हो सकते; क्योंकि भगवत्-विस्मृतिरूप परम दुःखमय संसारको उन्होंने मनमें बसा रखा है, उनके लिये संसार सदा दुःखरूप ही है।

इसके विपरीत, जिनके मनमें भगवान् बसते हैं, जो नित्य भगवत्सम्पर्कमें रहते हैं, जिनकी अहंता भगवान्की अनुगामितामें परिणत हो चुकी है, जिनकी सारी ममता भगवान्के चरणकमलोंमें केन्द्रित हो चुकी है, जिनकी आसक्ति भगवान्की स्वरूप-लीला-सम्पत्तिमें समाहित हो गयी है और जिनकी कामना केवल श्रीभगवान्के प्रेमराज्यमें ही विचरण करती है, उनका प्रत्येक कार्य भगवत्प्रीतिकी प्रेरणासे तथा भगवत्-सन्निधिकी अनुभूतिमें होता है और उनकी प्रत्येक वस्तु भगवान्के प्रति समर्पित होकर धन्य हो जाती है, वे चाहे बाहरसे त्यागके चिह्न न धारण करते हों, पर वे ही यथार्थ त्यागी हैं। त्यागीको ही शान्ति मिलती है—‘**त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्**’ (गीता १२।१२) और जहाँ शान्ति है, वहीं सुख है; अतएव ऐसे पुरुषोंके लिये संसार सर्वथा सुखमय है; क्योंकि वह भगवान्का लीला-क्षेत्र है और प्राणिमात्रके कल्याणके लिये होनेवाली मधुर लीलासे ओतप्रोत है। ऐसे ही पुरुष संसारमें धन्य हैं। इस दृष्टिसे संसारको आनन्दसे उत्पन्न, आनन्दमें स्थित और आनन्दमें ही विलीन होनेवाला जानकर आनन्दस्वरूपका अनुभव करना चाहिये।

हनुमान्जीद्वारा रावणकी चिकित्सा करनेका यत्न

(मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय)

भगवान् रामने सीधे लंकापर आक्रमण न करके पहले हनुमानजीको वहाँ भेजा था। इसका सांकेतिक तात्पर्य क्या है? श्रीरामचरितमानसमें जहाँपर मानस रोगोंका वर्णन आया है, वहाँ मानस रोगोंके वर्णनके साथ ही यह भी कहा गया है कि मनके रोगोंको नष्ट करनेवाला वैद्य चाहिये। और वह वैद्य कौन है?

सदगुरु बैद बचन बिस्वासा ।

‘सद्गुरु ही वह वैद्य है।’ हनुमान्जीको रावणके पास भेजनेका तात्पर्य यह था कि हनुमान्जी ही वस्तुतः सद्गुरु हैं। वे शंकरके अवतार हैं।

भगवान्का तात्पर्य यह है कि रावण-जैसा रोगी, जो अपने रोगके द्वारा स्वयं तो दुःख पा ही रहा है, पर अपनेसे भी अधिक वह सारे समाजको दुःखमें डाल रहा है, उसके रोगका निदान हो जाय, भगवान् चेष्टा यह करते हैं कि रावणके वधकी आवश्यकता न पड़े। तात्पर्य यह है—‘जैसे जब हम किसी रोगीको चिकित्सकके पास ले जाते हैं, तो वह पहले तो यही चेष्टा करता है कि औषधिके द्वारा ही रोग शान्त हो जाय, पर अगर औषधिके द्वारा रोग शान्त न हो तो फिर उसकी शल्य-चिकित्सा भी करनी पड़ती है। भगवान्ने हनुमान्जीको इसीलिये भेजा कि तुम सद्गुरुके रूपमें वैद्य हो, इसलिये तुम जाकर रावणके रोगको देखो और उसे दूर करनेकी चेष्टा करो। रावण यदि स्वस्थ हो जाय तो इसके परिणामस्वरूप समाज भी स्वस्थ होगा। रावणकी अस्वस्थता सारे समाजको विनाशकी ओर ले जा रही है, पर हनुमान्जी-जैसे वैद्य भी चेष्टा करके रावणकी चिकित्सा नहीं कर पाते।

हनुमान्जीने यहाँपर रावणके रोगोंको पकड़ लिया और उन्होंने यह निर्णय किया कि रावणके रोगोंकी यह जड़ यदि एक बार नष्ट हो जाय, तो उसके अन्य रोग स्वयं नष्ट हो जायँगे। इसीलिये हनुमान्जीने तुरंत रावणसे अनुरोध किया कि मैं तुम्हें कुछ और छोड़नेके लिये नहीं कहता, तुम केवल एक ही वस्तु छोड़ दो।

क्या ?

मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।

(4123)

‘—तुम तमरूप अभिमानका त्याग कर दो।’
हनुमान्जी इतने उदार हैं कि उसे केवल एक ही वस्तु छोड़नेके लिये कहते हैं। यदि बहुत कुपथ्य करनेवाला रोगी हो और उसको वैद्य अगर सब कुछ छोड़नेके लिये कहे तो शायद वह एक भी बात न माने। तो चतुर वैद्य कहता है कि ‘अच्छा भाई, भले सब न छोड़ सको, पर इतना तो छोड़ ही दो। और अभिमानमें भी एक शब्द जोड़ दिया— **‘तम अभिमान।’** चलो, सतोगुणी, रजोगुणी अभिमानको न भी छोड़ पाओ तो कोई बात नहीं है, पर कम-से-कम तमोगुणी अभिमानको तो छोड़ दो। और इसका उत्तर रावणकी ओरसे क्या मिला?

बोला बिहसि महा अभिमानी । मिला हमहि कपि गुर बड़ ग्यानी ॥

(4 | 23 | 2)

रावणने हँसकर कहा—‘अच्छा! तो अब मुझे तुम-जैसा ज्ञानी गुरु मिला। तुम मेरी चिकित्सा करने—मुझे स्वस्थ बनानेके लिये आये हो? रावणका हँसकर ऐसा कहनेका तात्पर्य यह था कि मुझ-जैसे ज्ञानीको एक बन्दर शिक्षा देने आया है। रावणका रोग इतना बढ़ गया है कि हनुमान्जीकी हितकर बात भी उसे नहीं सुहाती।

जो सामान्य रोगी होता है, वह तो वैद्यकी बातोंपर विश्वास करता है और उसके कहे अनुसार पथ्य आदि करता है। पर जब रोग असाध्य हो जाता है और रोगीकी मृत्यु होनेवाली होती है, तो बहुधा उसकी प्रकृति कुपथ्यकी दिशामें होने लगती है, मानो उसकी प्रकृति भी वैसी ही हो जाती है। वैद्य जो कहता है, वह उसका ठीक उलटा ही करता है। इसीलिये लिखा हुआ है—
काल दंड गहि काह न मारा। हरइ धर्म बल बद्धि बिचारा॥

(६ | ३६ | ७)

‘काल लाठी लेकर किसीको नहीं मारता। वह

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः ।

आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्

प्रोद्दीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥

जबतक स्वास्थ्य ठीक है, वृद्धावस्था दूर है, इन्द्रियोंमें साधन—भजन—ध्यान करनेकी शक्ति है, आयु समाप्त नहीं हो गयी है, विवेकी बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि तभीतक आध्यात्मिक उन्नतिके लिये बड़ा भारी प्रयत्न कर ले; क्योंकि जब घरमें आग लग जाय, तब कोई कहे कि जल्दी करो, कुआँ खुदवाओ, आग लग गयी है, जल चाहिये, जल्दी करो, तो यह सुनकर चाहे कितनी ही जल्दी की जाय, उद्योग किया जाय, किंतु अब कुआँ खुदकर कब जल आयेगा? आग तो बड़े जोरोंसे लग गयी है; इसलिये जल्दी-से-जल्दी अपने उद्धारके लिये चेष्टा करनी चाहिये। आध्यात्मिक उन्नतिके लिये देर नहीं करनी चाहिये। दूसरे जो सांसारिक काम हैं, ये आप करेंगे तो भी हो जायँगे और आप न करेंगे तो आपके बेटे-पोते इनको कर लेंगे, परंतु आपका कल्याण कौन-से बेटे-पोते कर लेंगे? आपके पास हजारों-लाखोंकी सम्पत्ति है, बहुत धन है, बड़ा कारोबार है, किंतु आपका शरीर जाता है और पीछे कोई कुटुम्बी भी नहीं है, तो जितना धन है, उसको राज्य सँभाल लेगा, आपकी मिलों-फैक्टरियोंको राज्य चला लेगा; पर आपके उद्धारमें कमी रहेगी तो उसको कौन-सा राज्य पूरी कर लेगा। यह काम दूसरेसे होनेवाला नहीं; इस कामको तो आप स्वयं ही करेंगे तभी होगा; इसलिये मनुष्यको चाहिये कि दूसरे जितने भी काम हैं, उनकी ओर ध्यान न देकर केवल एक आध्यात्मिक उन्नतिकी ओर ही ध्यान दे। नीतिकारोंने भी कहा है—

कोटिं त्यक्त्वा हरिं स्मरेत् ।

—करोड़ों कामोंको छोड़कर एक भगवान्‌का स्मरण करना चाहिये। दूसरे मौके तो हरेकको मिल जाते हैं, पर यह मौका बार-बार नहीं मिलता।

खादते मोदते नित्यं शूनकः शूकरः खरः ।

तेषामेषां को विशेषो वृत्तिर्येषां तु तादृशी ॥

खाना, पीना, ऐश-आराम करना आदि तो मनुष्य क्या, पशु-पक्षियोंमें भी हो जाता है, परंतु आध्यात्मिक

उन्नतिका अवसर मनुष्ययोनिके सिवा और कहीं नहीं है। इसलिये बड़ी सावधानीसे काम लेना चाहिये। आजतक समय चला गया है, विचार करनेसे दुःख होता है। सन्तोंने कहा है कि 'भजनके बिना जो दिन गये, वे हमारे हृदयमें खटकते हैं। किंतु भाइयो! अब क्या हो!'

अब पछिताए होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत।

समय चला गया, उसके लिये पछतानेसे क्या होगा, अब तो यही है कि **‘गयी सो गयी, अब राख रहीको।’** जो समय बचा है, उसी समयको सावधानीके साथ ऊँचे-से-ऊँचे काममें लगानेकी विशेष चेष्टा करें तो आगे तो नहीं रोना पड़ेगा। हो गया सो हो गया, परंतु अब आगेके लिये पूरे सावधान हो जायँ, तब ही हमारा जीवन सफल हो सकता है।

आप कहेंगे कि इतने दिन चले गये, अब क्या होगा ? इसका उत्तर यह है कि अब भी निराश होनेकी बात नहीं है। जैसे कुएँमें बहुत रस्सी चली जाती है, पर एक हाथ भी रस्सी यदि हाथमें रहती है तो उससे लोटेको कुएँसे बाहर निकालकर जल पी लेते हैं; पर यदि वह हाथभर भी रस्सी हाथमें नहीं रहती है, वह भी हाथमेंसे छूट जाती है तो फिर ऐसा नहीं है कि वह हाथभर ही नीचे जायगी, वह तो कुएँमें ही नहीं, कुएँके जलके भी नीचे तहमें चली जायगी। फिर तो उसे निकालनेके लिये बड़ी रस्सी चाहिये, काँटा चाहिये और जब बहुत देर मेहनत करेंगे, तब कहीं वह लोटा-डोरी मिलेगी। नहीं तो, बड़ी कठिनता है। ऐसे ही आजतककी आयु कुएँमें गयी। ऐसी गयी कि काम नहीं आयी; किंतु अब भी जो थोड़ी-सी उम्र शेष है, उसीको अच्छे काममें लगा दें तो हमारा मनुष्यजीवन सफल हो सकता है; पर यदि आयुका यह बचा हुआ थोड़ा-सा समय भी यों ही बीत गया तो फिर सिवा पश्चात्तापके और कुछ नहीं होगा। क्या पता है कि फिर यह मानव-जीवन कब मिलेगा।

‘बार-बार नहिं पाड़ये, मनुष-जनमकी मौज।’

मनुष्य-जन्म बार-बार नहीं मिलता। इसलिये बड़ी सावधानीके साथ बचे हुए समयको आध्यात्मिक उन्नतिमें विशेषरूपसे लगानेकी चेष्टा करनी चाहिये।

तुलसी-जयन्तीपर विशेष—

गोस्वामी तुलसीदासजीकी नाम-निष्ठा

(विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीदिनेशचन्द्रजी उपाध्याय, एम०एस-सी० (कृषि), पी-एच०डी०)

नाम-जपकी महिमाका वर्णन करते हुए गोस्वामीजीने अपने अनुभवकी जो अभिव्यक्ति श्रीरामचरितमानसमें की है, उसे हृदयंगम करके साधकोंको अलौकिक प्रेरणा मिलती है—

नाम प्रभाउ जान सिव नीको । कालकूट फलु दीन्ह अमी को ॥
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू । लोक लाहु परलोक निबाहू ॥
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ । नाम जीहँ जपि जानहिं तेहू ॥
साधक नाम जपहिं लय लाएँ । होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ ॥
जपहिं नामु जन आरत भारी । मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी ॥
नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं । करहु बिचारु सुजन मन माहीं ॥
नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू । भगत सिरोमनि भे प्रहलादू ॥
ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ । पायउ अचल अनूपम ठाऊँ ॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू । अपने बस करि राखे रामू ॥
राम नाम कलि अभिमत दाता । हित परलोक लोक पितु माता ॥
नहिं कलि करम न भगति बिबेकू । राम नाम अवलंबन एकू ॥
कहाँ कहाँ लगि नाम बडाई । राम न सकहिं नाम गन गाई ॥

(रामचरितमानस-बालकाण्ड)

गोस्वामी तुलसीदासने अपने समस्त काव्यको गुणरहित करार देते हुए उसमें केवल एक विश्वविदित गण बतलाया है. वह है—श्रीराम नाम—

भनिति मोरि सब गुन रहित बिस्व बिदित गुन एक ।

इस अद्वितीय राम नाममें पाँच अनुपम गुण बतलाये

एहि महँ रघुपति नाम उदारा । अति पावन पुरान श्रुति सारा ॥
मंगल भवन अमंगल हारी । उमा सहित जेहि जपत परारी ॥

इस नामकी उदारताका विस्तृत उल्लेख श्रीरामचरितमानसके बालकाण्ड दोहा सं०१८—२७ के बीचमें तथा अन्यत्र भी मिलता है, इन नौ दोहोंमें क्रमशः नौ सम्बन्धोंके लक्ष्य हैं, जो जीवके ईश्वरप्राप्तिहेतु अभीष्ट हैं, इनमेंसे किसी एक सम्बन्धसे हम ईश्वरकी प्राप्ति कर सकते हैं। ये सम्बन्ध हैं—पिता, रक्षक, शेषी, भर्ता, ज्ञेय, शरीरी, भोक्ता, आधेय और स्वामी।

बीजरूपमें आये हैं—

‘राम लखन सम प्रिय तुलसी के’ से ‘जीह जसोमति हरि हलधर से।’ तक क्रमशः इन्हींके साक्षात्कारके हैं, इनमें नामके स्वामित्वका नवाँ बीजरूप इस प्रकार है—‘जीह जसोमति हरि हलधर से’ अर्थात् यदि जीभरूपी यशोदाजीके द्वारा दोनों वर्णों ‘रा’ और ‘म’ का रटन होता रहे तो ये दोनों वर्ण कृष्ण-बलरामकी तरह आनेवाली सभी बाधाओं एवं क्लेशोंका हरण करते रहेंगे।

राम नामके दूसरे गुण पावनताका उदाहरण देखें; जिसने रामको भी भक्त हनुमान्‌के अधीन कर रखा है, तथा करोड़ों तीर्थोंसे भी ज्यादा प्रभावी है प्रभुका पावन नाम—

समिरि पवनसत पावन नाम् । अपने बस करि राखे राम् ॥

\times \times \times

तीरथ अमित कोटि सम पावन । नाम अखिल अघ पग नसावन ॥

X X X

पाई न केहिं गति पतित पावन राम भजि सन सठ मना ।

राम नामका तीसरा गुण ‘पुरान श्रुति सार’ पर दृष्टिपात करें, तुलसीदासजीने इसे ब्रह्मा-विष्णु-शिवका स्वरूप और वेदोंका प्राण ही बतलाया है—

‘बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो’

‘र’ ‘अ’ ‘म’ अग्नि-सूर्य-चन्द्रका बीजाक्षर होनेसे त्रिताप (दैहिक, दैविक, भौतिक ताप) – का नाशक एवं सत-चित-आनन्दका स्वरूप है।

राम नामका चतुर्थ गुण है—‘मंगल भवन’, जो अति उदार, अति पावन और श्रुति-पुरानका सार है, वह मंगलकारी होगा ही. तभी तो तलसीदासजी कहते हैं—

‘जग मंगल गन ग्राम राम के’ तथा

‘मंगल करनि कलि मल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की’
 राम नामके पाँचवें गुण ‘अमंगलहारी’ पर ध्यान दें,
 रामनामसे बड़े-से-बड़ा अमंगल ही क्या; भाग्यमें लिखा
 आनिष्टकारी योग भी मिट जाता है। यथा—

Arma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shr

स्पष्ट है कि तुलसीदासजीके मतमें राम नामका आश्रयण और जप ही अभीष्ट एवं कल्याणकारी है।

* राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार । तुलसी भीतर बाहेरहुँ जाँ चाहसि उजिआर ॥

श्रावणमास और उसके व्रत-पर्वोत्सव

चान्द्रवर्षके अनुसार वर्षका पाँचवाँ मास श्रावणमास कहलाता है। लोकमें इसे 'सावन' भी कहते हैं। यह मास भगवान् शंकरको विशेष प्रिय है, इसलिये इस मासमें आशुतोष भगवान् साम्बसदाशिवकी पूजा-आराधनाका विशेष महत्त्व है। जो प्रतिदिन पूजन न कर सकें, उन्हें सोमवारको शिवपूजा अवश्य करनी चाहिये और व्रत रखना चाहिये। सोमवार भगवान् शंकरका प्रिय दिन है।

शिवोपासनाका अत्यन्त व्यापक रूप है, तथापि भक्त अपनी भावनाके अनुसार कृपाप्राप्तिके लिये अनेक प्रकारसे उनकी आराधना करते हैं। भगवान् शिव सगुण-साकार—मूर्तरूपमें तथा निर्गुण-निराकार—अमूर्तरूपमें भी पूज्य हैं। परम शिव, साम्बसदाशिव, उमा-महेश्वर, अर्धनारीश्वर, मृत्युंजय, पंचवक्त्र, पशुपति, कृत्तिवास, दक्षिणामूर्ति, योगीश्वर, महादेव तथा महेश्वर आदि नाम-रूपोंमें भगवान् शिवकी आराधना होती है। इसके अतिरिक्त ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा सद्योजात—ये भगवान् शिवकी पाँच मूर्तियाँ हैं, पंचवक्त्रपूजनमें इन्हीं नामोंसे पूजन होता है। शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव—ये क्रमशः पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य तथा चन्द्रमें अधिष्ठित मूर्तियाँ हैं। ऐसे ही रुद्ररूपमें एकरुद्र, एकादशरुद्र तथा असंख्यात रुद्रोंके रूपोंमें उन्हींकी आराधना होती है। निर्गुण-निराकाररूपमें हृदयदेशमें उनका ध्यान किया जाता है। लिंगोपासना तो व्यापकरूपमें अनुष्ठित होती ही है।

इन विविध शिवोपासनाओंका अनुष्ठान श्रावणमासमें विशेष फलदायी तथा भगवान् शंकरको प्रीति प्रदान करनेवाला होता है। ऐसे ही शिवमहिमापरक शिवपुराण-लिंगपुराण आदिके पारायण-श्रवण आदिका भी श्रावणमासमें विशेष माहात्म्य है।

श्रावणमें सोमवारका व्रत, प्रदोषव्रत तथा शिवपार्थिव-पूजन परम कल्याणकारी है। सोमवारको यदि प्रदोष पड़ जाय तो वह विशेष फलदायक होता

है। व्रतके दिन भगवान् शंकरका षोडशोपचार अथवा पंचोपचार-पूजन, पंचाक्षरमन्त्रका जप, स्तोत्र-पाठ, अभिषेक आदि विशेषरूपसे करना चाहिये। यह सायंकाल (प्रदोषकालमें) करना विशेष महत्त्वपूर्ण है। दिनभर व्रत रहकर पूजनोपरान्त रात्रिमें एक बार भोजन करे। भोजनमें कुछ लोग एक अन्न खानेका भी नियम रखते हैं अथवा केवल फलाहार करते हैं।

भगवान् शिवका पंचाक्षर मन्त्र 'नमः शिवाय' श्रावणमासमें विशेष रूपसे जपनीय है। ॐकारसे समन्वित होकर यह षडक्षर कहलाता है।

श्रावणमासमें लघुरुद्र, महारुद्र तथा अतिरुद्रपाठ करानेका भी विधान है। यजुर्वेदान्तर्गत रुद्राष्टाध्यायीका इसमें विशेषरूपसे पाठ होता है। यह अनुष्ठान पाठात्मक, अभिषेकात्मक तथा हवनात्मक—तीन रूपोंमें होता है। भगवान् शंकरको जलधारा विशेष प्रिय है, अतः श्रावणमासमें जो वर्षाऋतुका समय है, भगवान् शंकरका



अभिषेक तथा बिल्वपत्रोंसे उनका अर्चन किया जाता है। बिल्वपत्र तोड़ते समय वृक्षको प्रणामकर निम्न मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये—

अमृतोद्भव श्रीवृक्ष महादेवप्रियः सदा।

गृह्णामि तव पत्राणि शिवपूजार्थमादरात्॥

(आचारेन्दु)

श्रावणशुक्ल चतुर्थीको 'दूर्वागणपतिव्रत' होता है। श्रावणशुक्ल पंचमी 'नागपंचमी' के नामसे विख्यात है। लोकाचार या देशभेदसे कहीं-कहीं कृष्णपक्षमें यह पर्व होता है। पंचमीतिथि नागोंके आविर्भावकी तिथि है। अतः

भय नहीं रहता है। विषदोष भी दूर हो जाता है। नाग भगवान् शंकरके आभूषणके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। अतः यह प्रकारान्तरसे भगवान् शिवके पूजनका ही प्रतीकरूप है। दीवाल या भित्तिपर नागोंका अंकन किया जाता है, प्रतिमा आदि बनाकर भी पूजन किया जाता है। नागोंको दूध अर्पित किया जाता है और नागपंचमीकी वह कथा सुनी जाती है, जिसमें नागमाता क्रदू और गरुड़माता विनताका वृत्तान्त वर्णित है।

राजस्थान आदि कुछ प्रदेशोंमें नागपंचमीका त्यौहार
श्रावणकृष्ण पंचमीको मनाया जाता है।

श्रावणशुक्लपक्षकी एकादशी ‘पुत्रदा एकादशी’ कहलाती है। इसके माहात्म्यमें आख्यान आया है कि प्राचीनकालमें माहिष्मतीपुरमें महीजित् नामक एक राजा राज्य करते थे, उन्हें कोई सन्तान नहीं थी। इसलिये वे निरन्तर चिन्तित रहते थे। एक बार उन्होंने प्रजाके सामने अपना दुःख निवेदन किया और पुत्रप्राप्तिका उपाय पूछा। राजा बड़े ही प्रजावत्सल थे, अतः प्रजाजन राजाके कष्टके निवारणके लिये महर्षि लोमशके पास गये और राजाको पुत्रप्राप्ति कैसे हो—इसका उपाय उनसे पूछा, तब महर्षिने कहा कि देखो! राजा महीजित् जो इस समय राज्यका भोग कर रहे हैं, यह इनके किसी जन्मान्तरीय पुण्यका फल है, किंतु पूर्वजन्ममें ये एक धनहीन वैश्य थे। एक बार प्याससे पीड़ित ये किसी जलाशयके पास पहुँचे, संयोगसे वहींपर बछड़ेके साथ एक प्यासी गौ भी पानी पीने आयी, इन्होंने प्यासी गौको वहाँसे हटाकर स्वयं पानी पिया। इसी पापसे आज ये पुत्रहीन हैं, इन्हें चाहिये कि श्रावणमासके शुक्लपक्षकी पुत्रदा एकादशीका विधिविधानसे व्रत करें, पुत्रकी प्राप्ति होगी। इतना सुनकर प्रजाजनोंने महर्षिको प्रणाम किया और स्वयं पुत्रदा एकादशीका व्रत किया तथा उस व्रतका फल राजाको दे दिया। व्रतके पुण्यप्रतापसे राजाको पुत्र प्राप्त हुआ।

मनाया जाता है और इसी तिथिको श्रावणी उपाकर्म होता है। रक्षाबन्धनमें पराह्व्यापिनी तिथि ली जाती है। यदि वह दो दिन हो या दोनों ही दिन न हो तो पूर्वा लेनी चाहिये। यदि उस दिन भद्रा हो तो उसका त्याग कर देना चाहिये। व्रतीको चाहिये कि इस दिन प्रातः नदी आदिमें सविधि स्नान करके तर्पण आदि करे। दोपहरमें निर्मित रक्षासूत्रकी प्रतिष्ठाकर उसका पूजन करे और ब्राह्मणसे हाथमें बाँधवाये। इस दिन बहनें भी भाइयोंको रक्षा बाँधती हैं।

श्रावणशुक्ल पूर्णिमा उपाकर्मका मुख्य काल है। वेदपारायणके शुभ कार्यको उपाकर्म कहते हैं। यह यज्ञोपवीत होनेके अनन्तर ही होता है। इस दिन प्रतिष्ठित नूतन यज्ञोपवीत धारण किया जाता है। इस दिन सर्वप्रथम तीर्थकी प्रार्थनाके अनन्तर पंचगव्यका प्राशनकर प्रायश्चित्तसंकल्प एवं हेमाद्रिस्नानसंकल्पसे दशविध स्नान होता है। तदनन्तर अरुन्धतीसहित ऋषिपूजन, सूर्योपस्थान, ऋषितर्पण, यज्ञोपवीतपूजन तथा नवीन यज्ञोपवीत धारण करनेकी विधि है। धारण किये यज्ञोपवीतको विसर्जितकर प्रतिष्ठित नूतन यज्ञोपवीत धारण किया जाता है, यज्ञोपवीत धारण करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥

(ब्रह्मोपनिषद्)

इस प्रकार श्रावणशुक्ल पूर्णिमाको श्रावणमास पूर्ण होता है। इस मासके कृत्योंके सम्बन्धमें महाभारतमें बताया गया है कि श्रावणमें पूरे मासपर्यन्त संयम-नियमपूर्वक जो एकभुक्तव्रत करता है और प्रतिदिन भगवान् शंकरका अभिषेक करता है, वह स्वयं भी पूजनीय हो जाता है तथा कुलकी वृद्धि करते हुए उसका यश एवं गौरव बढ़ानेवाला हो जाता है—

श्रावणं नियतो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत्।

तत्र तत्राभिषेकेण पूज्यते ज्ञातिवर्धनः ॥

श्रावणशुक्ल पूर्णिमाको 'रक्षाबन्धन' का पर्वोत्सव

(पुरुषार्थचिन्तामणि)

राग-द्वेष

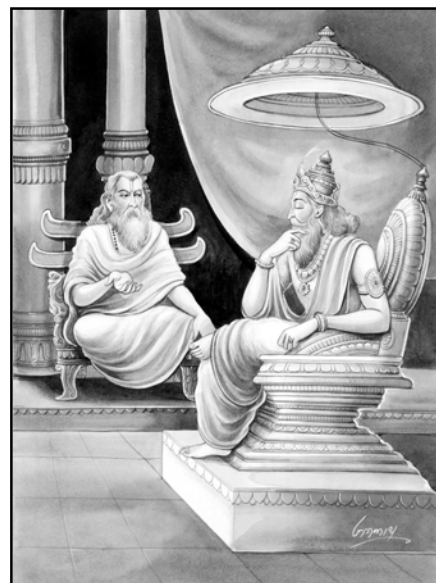
(ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज, अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ)

रागका मतलब है—एकतरफा आकर्षण या स्नेहकी अधिकताके कारण उपजी मनोवृत्ति, जो कि प्रेमका विकृत रूप है। दोनों ओरसे परस्पर आकर्षण हो तो प्रेम कहा जाय। राग रंगको भी कहते हैं, मतलब किसीके रंगमें रँग जाना। किसीपर इतना आसक्त हो जाना कि उसके दुर्गुण, दोष, बुराई दिखायी ही न दें। कोई आकर बताये तब भी विश्वास ही न हो, बल्कि सुनानेवालेपर क्रोध आने लग जाय। राग और आगमें राग अधिक खतरनाक है, क्योंकि आग तो छूनेपर ही जलाती है, पास आनेपर ही जलाती है, परंतु राग तो हजार कि.मी. दूरसे भी जलाता है। आग केवल शरीरको जला सकती है, परंतु राग तो दिलको जलाता है, धीरे-धीरे देहको भी घुन-जैसा लग जाता है। राग व्यक्तिको अन्धा बना देता है। कहते हैं कि लोचनान्धको नहीं दिखता, परंतु रागान्धको नेत्र होनेपर भी नहीं दिखता (रागान्धो नैव पश्यति)। इसका उत्कृष्ट उदाहरण है धृतराष्ट्र। उसे अपने दुष्ट पुत्र दुर्योधनके दोष नजर ही नहीं आते। पुत्रविषयक रागरूपी रतौंधी (मोतियाबिन्द) ने धृतराष्ट्रके विवेकरूपी नेत्रोंको हर लिया है। रागमें जो रहे, वह है अग्निबीज। र+आग=राग अर्थात् अग्नि-बीजमन्त्र-विशिष्ट आग ही राग है, जिसमें मन्त्रजन्य दाहकता भी समाविष्ट है।

द्वेषका मतलब है—अकारण ही किसी व्यक्तिके प्रति एकतरफा घृणाका भाव मनमें आना, परिणामतः उसकी हर क्रियामें कमी नजर आने लग जाती है। जिससे द्वेष हो जाता है, उसमें दोष ही दोष नजर आते हैं, गुण दिखते नहीं। इसीलिये कहा है कि **द्वेषान्धो नैव पश्यति**। इसका प्रमुख उदाहरण है शिशुपाल, जिसे श्रीकृष्णमें कोई अच्छाई दिखायी ही नहीं देती। दुर्योधनको पाण्डवोंमें कोई गुण नजर ही नहीं आता। राग-द्वेष एक ऐसी लाइलाज मानसिक बीमारी है, जिसकी दवा

दुनियाके किसी चिकित्सकके पास नहीं है और इस रोगसे पीड़ित रोगी हमारे-आपके बीच फैले हुए हैं, किसीको इसकी चिन्ता ही नहीं। कैंसर, मधुमेह (शुगर), हार्ट, ब्रेनकी चर्चा है, चिन्ता है, परंतु जिस महामारीने पूरे विश्वकी मानवीय संवेदनाओंको तहस-नहस करके रख दिया, समग्र मानवजातिकी मानसिक शान्ति तथा आनन्दके उपवनको उजाड़ डाला, भयंकर महायुद्धोंके दावानलमें समग्र विश्वको झोंक डाला, उसका ही नाम है 'राग-द्वेष' और इसकी चिन्ता किसीको नहीं।

भाई! इसका उपचार होनेमें कठिनाई ये है कि रोगीको खबर ही नहीं चलती कि वह राग अथवा द्वेषसे पीड़ित है। यदि उसकी प्रवृत्तियोंसे आहत परिवारके, पड़ोसके, गाँवके अथवा अन्य हितैषी जन उसे समझानेकी कोशिश करते हैं तो वह अधिक नाराज होकर द्रुत गतिसे इस बीमारीको हृदयमें सँजोता जाता है, लोगोंपर आक्षेप करता है कि आप सब मेरी उन्नतिसे जलते हैं। अन्ततः



सुबुद्ध लोग समझाकर (जैसे धृतराष्ट्रको विदुर-भीष्म-द्रोण-व्यास-नारदादि समझाकर थक गये थे, परंतु वह स्वीकार ही नहीं करता कि मैं गलत हूँ) थककर अलग

पिता—ये कीटाणु अनेक प्रकारके होते हैं, किंतु अधिकतर ये तीन ही रूपों में दिखायी दिया करते हैं—

पिता—वह है मुख्यतः सफाई और सदाचार। ये दोनों ही बातें स्वास्थ्य-दृष्टिसे भोजनसे कम महत्त्व नहीं रखतीं। सफाईके अन्दर भोजनकी सफाई, पानीकी सफाई, हवाकी सफाई, शरीरकी सफाई, वस्त्रोंकी सफाई, घर-द्वारकी सफाई और पास-पड़ोसकी भी सफाई शामिल है। इनके अतिरिक्त मन, स्वभाव और चरित्रकी स्वच्छता भी सदाचारके अन्दर आ जाती है। इस प्रकार अपने रहन-सहनमें हमें सब प्रकारकी सफाई और

पिता—यदि आजकी बतायी हुई तमाम बातोंको तुम ध्यानमें रखोगे और उनके अनुसार चलनेकी चेष्टा करोगे तो ईश्वर अवश्य तुम्हारा कल्याण करेगा और शारीरिक स्वास्थ्यके साथ-साथ मनका स्वास्थ्य और शक्ति भी तुम लाभ करोगे।

‘जो इस सम्पूर्ण चराचर-जगत्के कर्ता और इसे अपने किये हुए कर्मोंके अनुसार सुख-दुःख देनेवाले हैं, जो संसारकी उत्पत्तिके हेतु तथा उसका अन्तकाल भी स्वयं ही हैं, सबको शरण देनेवाले उन्हीं भगवान् शङ्करकी मैं शरण लेता हूँ। जिनके मोह, तमोगुण और रजोगुण दूर हो गये हैं, वे योगीजन, भक्तिसे मनको एकाग्र रखनेवाले निष्काम भक्त तथा अपरिच्छिन्न बुद्धिवाले ज्ञानी भी जिनका निरन्तर ध्यान करते हैं, उन अनन्त दिव्यस्वरूप शरणदाता भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ।’

तीर्थ-दर्शन—

‘अब चित चेति चित्रकूटहि चलु’

(डॉ० श्रीअनजप्रतापसिंहजी, डी०लिट०)

मैं चित्रकूट वर्षमें एकबार अवश्य जाता हूँ, पर जब भी जाता हूँ, तो कोई नयी वस्तु अवश्य दिखायी पड़ती है, इसके साथ ही अनेक रहस्य भी उद्घाटित होते हैं। चित्रकूटकी महिमा पुराणों और रामकथासे सम्बन्धित ग्रन्थोंमें विशेष रूपसे गायी गयी है, सबकी उद्धरणी बहुत लम्बी होगी। त्रेतायुगमें रामने वनवासके मध्य जब इसपर लगभग साढ़े दस वर्षतक निवास किया तो इसकी महत्ता विश्वविदित हो गयी। आज भी कहीं कोई न्यूनता नहीं है। इसके विविध आकर्षण बने हुए हैं।

इसका अमर इतिहास है। देशकी सभी भाषाओंमें रचित रामायण ग्रन्थोंमें इसकी चर्चा है। इतिहास और भारतीय भूगोल तथा पुरातत्त्वसम्बन्धी ग्रन्थोंमें इसकी चर्चा है। यह रामके संकटका साथी रहा है, जो संकटका साथी रहता है, वह कभी नहीं भूलता है, कृतघ्नी चरित्रोंकी बात दूसरी है। जब सभी वैभवसे पूर्ण पैतृक राजधानी अयोध्या, वहाँके प्राणी, सरयूनदी, भरा-पूरा परिवार यहाँतक कि पिता और विमाताने साथ नहीं दिया। ज्योतिषविद्याने साथ नहीं दिया, तब साथ दिया चित्रकूटने। गुरु वसिष्ठ तथा अन्य ज्योतिषियोंने जो शुभ मुहूर्त राजतिलकके लिये सुनिश्चित किया था—वही गृह—त्यागका हो गया। नियतिको कोई नहीं जानता है। वसिष्ठजीने कुण्डली बनायी थी, उसमें इस प्रकारकी कोई विसंगति नहीं थी। पूरी अयोध्या हतप्रभ हो गयी। वनवासके विविध प्रारूप बनने लगे—(१) सुमन्तजी वनका भ्रमण कराकर रामको वापस अयोध्या ले आयेंगे। (२) वनमें एक महल बनाया जाय, जिसमें राम १४ वर्षतक निवास कर अयोध्या आयेंगे।

इसी मध्य महारानी कैकेयी ने घोषणा कर दी कि वल्कल वस्त्रोंमें, उदासीनताके साथ १४ वर्षतक राम वनवास करेंगे। राम-वनवासकी घोषणाके उपरान्त यह दूसरी दुर्घटना वनवासके स्वरूपको लेकर हो गयी।

अगले क्षणमें कुलवध सीताजी और भाई लक्ष्मणने
Hinduism Discord Server <https://dsc.gg/dh>
रामसे साथ-साथ चलनेके लिये कहा। रामने समझाया

कि वनवास तो केवल मुझको मिला है। सीताजीको माताओंने भी वन न जानेके लिये समझाया, पर उन्होंने अपना धर्म बताकर सबको मौन कर दिया। कुछ लोगोंने उनको मिथिला (मायके) चले जानेकी राय भी दी। लक्ष्मणजीने इसको अपना कर्तव्य बताया, सेवा-धर्म और रक्षाधर्म बताया। अन्ततः पातिव्रत और बन्धुधर्मकी विजय हुई। इसी क्षण कैकेयीने तीनों लोगोंके लिये तीन वल्कल वस्त्र लाकर दे दिये और कहा कि इनको पहनो और जंगलको जाओ। परा जनसमूह जड़-सा हो गया।

राम, लक्ष्मण और सीता वल्कलको धारणकर अवध राजभवनसे बाहर हो गये। सुमन्तजी रथपर बैठाकर जब सबको जंगल ले जाने लगे तो जनमानस आगे लेट गया, रामने सहजभावसे सबसे कहा—माता-पिताकी आज्ञा है, उसको मैं टाल नहीं सकता हूँ। आपलोग मेरा सहयोग कीजिये। भीड़ पीछे हो गयी।

रामका रथ चला, जनसमूह उसके साथ चला। प्रथम रात्रिनिवास तमसा नदीके तटपर हुआ। यह स्थान फैजाबाद-सुलतानपुरके बीच है। प्रातः रथके साथ जनसमूह अयोध्या लौट जाता है, रामके आग्रहसे। राम दक्षिण दिशाकी ओर आगे बढ़ते हैं। रास्तेमें उनसे लोग मिलते हैं, वे तरह-तरहके प्रश्न करते हैं, राम एक ही उत्तर सबको देते हैं—‘मैं पिताके वचनको मानकर वन आया हूँ।’ वे कहीं उद्विग्न नहीं होते हैं। सुमन्तजीको शान्तिपूर्वक विदा करते हुए भी उन्होंने कहा—पिताजीसे कह दीजियेगा कि दुखी न हों, मैं चौदह वर्षोंके उपरान्त अयोध्या लौटकर आ जाऊँगा, पर लक्ष्मणने स्वभावतः कुछ कड़ा संदेश दिया और रामको शान्ति-सन्देशसे रोका भी था।

दशरथजी तीनोंकी प्रतीक्षा कर रहे थे। जब उन्होंने रिक्त रथको लेकर आये हुए सुमन्तजीको देखा तो नैराश्य, बेचैनी और आत्मग्लानिमें डूब गये। सुमन्तजीके निकट आनेपर उन्होंने पूछा—वे लोग लौटे नहीं? सुमन्तजीने कहा—नहीं, मैंने विनय तो बहंत की। दशरथजीने पूछा—

आते समय उन लोगोंने कुछ कहा ? सुमन्तजी बोले—
हाँ, रामने कहा कि पिताजीसे कह दीजियेगा कि वे स्वस्थ
और प्रसन्न रहें, हमलोग जंगलमें रह लेंगे और चौदह
वर्ष उपरान्त लौटकर उनसे मिलेंगे, इसके उपरान्त
लक्ष्मणने उत्तेजित होकर कहा—रहने दीजिये, उस
पिताको क्या सन्देश देते हैं, जिसने बिना सोचे-विचारे
किसीके कहनेपर जंगलमें भेज दिया। दशरथजीको
असह्य आत्मपीड़ा होने लगी। पीड़ा इस बातकी हुई कि
जिसको मैंने वनवास दिया, उसने तो आत्मीयतासे पूर्ण
सन्देश दिया और जिसको मैंने वनवास नहीं दिया—जो
अपने मनसे गया, उसने कटु वचन कहा। मैं कितना पापी
हूँ कि ऐसे शीलगुणी रामको वनवास दे दिया। यही
शीलका फूटना है। जब क्रोध फूटता है, तो उसका
समाधान हो जाता है, परंतु जब शील फूटता है, तो उसका
समाधान नहीं होता है। रामका शील यहाँ फूटता है।
राजा दशरथ उद्वेलित होते हैं, पश्चात्ताप करते हैं। वे बार-
बार अपराधबोधसे ग्रसित होते हैं, सोचते हैं कि मैं कितना
बड़ा अपराधी हूँ कि राम—जैसे शीलवान्, धैर्यशाली
पुत्रको वनवास दे दिया। दशरथजीकी मृत्युमें यह
पश्चात्ताप सहायक सिद्ध हुआ।

राम धोपाप (सुलतानपुरके आगे) —में स्नान-पूजा करके प्रयागकी ओर बढ़ते हैं। भरद्वाज-आश्रममें वे भरद्वाजजीसे अपने निवासके लिये स्थान पूछते हैं, तो वे दार्शनिक उत्तर देते हैं कि आप कहाँ नहीं हैं? फिर वे चित्रकूटके कामदगिरिपर ठहरनेकी सलाह देते हैं। राम विन्ध्यभूमिकी ओर बढ़ते हैं। इसी अन्तरालमें पिताजीकी मृत्युकी सूचना मिलती है। विन्ध्याचल (वर्तमान) और मीरजापुरके मध्य वे गंगा पार करके स्नान-पूजा और बालूका पिण्ड बनाकर पिण्डदान करते हैं। सीताजी गंगाकी धाराके किनारे अयोध्याकी ओर मुख करके दोनों हाथोंको जोड़कर वर माँगती हैं कि—‘हे गंगा माँ! हम तीनों सकुशल लौटें।’ वह स्थान ‘राम-गया’ कहा जाता है। आज भी लोग वहाँ बालूका पिण्डदान करते हैं, शवदाह करते हैं।

आगे वे लोग अष्टभुजापर रुकते हैं, सीताजी

भोजन बनाती हैं। वहाँ सीता-रसोई और सीताकुण्ड नामके स्थान हैं। वहाँ उन्होंने भोजन करके विश्राम किया था। वहाँसे वे लोग वाल्मीकि-आश्रम गये। वाल्मीकि-आश्रमसे चित्रकूट ३० किलोमीटरकी दूरीपर है। महर्षि वाल्मीकिसे परामर्श करके वे लोग चित्रकूट पहुँचे थे और वहाँ कामदगिरिको उन्होंने अपना प्रवास-स्थल बनाया। कामदगिरितक बड़ा-सा पहाड़का टिल्ला है, जिसके ऊपर समतल है। दो छेद हैं, जिनमें चिमटे-जैसे लोहे फँसे हैं। हो सकता है, इन्हींमें दोनों लोग धनुषको खड़ा करके रखते रहे हों। वनवासके बारहवें वर्षतक लोग यहीं रहे। दस वर्ष छः माहतक यहाँ रहनेका उल्लेख है।

अब मैं अयोध्यासे चित्रकूटकी यात्राका वर्णन करता हूँ। यह यात्रा तीनों लोगोंने नंगे पैर चलते, कन्दमूल खाते और कुश-काथरीपर सोते हुए की थी। अलंकार और आध्यात्मिक पुटमें चाहे जो कहा जाय, पर रामको वनवासमें दुखोंके चरमोत्कर्ष मिलते हैं। आज भी उक्त मार्गपर नंगे पैर चलनेमें अपार कष्ट होता है। विचित्र कंकड़-पत्थर, उतार-चढ़ाव, काँटे, गुरुखुल हैं। राम गाँव और नगरोंमें नहीं जाते थे। निषाद उनको अपना सबकुछ दे रहा था। किष्किन्धाके राजभवनमें वे रह सकते थे। गाँवके किसी निवासीके यहाँ जा सकते थे, पर वे आद्योपान्त शुद्ध वनवासी ही बने रहे।

चित्रकूट, रामनिवास और कामदगिरिका वर्णन वाल्मीकि-रामायण, पुराण, काव्य, नाटक और स्फुट साहित्यमें है। इसका स्वस्थ, पावन इतिहास और भूगोल है। राम-लक्ष्मण और सीताका आश्रयदाता है न। आज भी वहाँके लोग बताते हैं कि रातको दो व्यक्ति एक स्त्रीके साथ घूमते हुए दृष्टिगत होते हैं। उनसे सम्बन्धित कुछ घटनाएँ भी घटती रहती हैं। आज भी लोग इसके सर्वोच्च समतल भागपर यदि चले जाते हैं तो मानसिक सन्तुलन खो बैठते हैं। महाकवि निराला भी लगभग ऊपरतक पहुँच गये थे, तबसे वे असंतुलित रहने लगे थे। उनसे भी दो व्यक्ति मिले थे। मेरे मित्र भी वहीं जा रहे थे। उनके गाँवके चार लोग भी साथमें थे, वे आधी

चढ़ाईसे उतर आये। मित्र आचार्यजीसे उन लोगोंने कहा कि हमलोग यहीं बैठे हैं, आप ऊपर जाइये। वे जब ऊपर गये तो उनसे दो लोग मिले, उन लोगोंने पूछा—तुम यहाँ क्यों चले आये? आचार्यजीने कहा—ऊपर जाना है, प्यास लगी है। पहाड़के भीतरसे पानी निकल रहा था। उसकी धारामें किसीने पाइप लगा दी थी तो पानीकी धारा उपयोगके लिये सुलभ हो गयी थी। सामनेके दोनों लोगोंने कहा—यह पानी रिस रहा है, पी लो। वे अँजुरीसे पानी पीने लगे। पानी पीनेके उपरान्त जब उन्होंने देखा तो वे दोनों व्यक्ति न थे। आचार्यजी पासके पत्थरके आसनपर बैठकर उन दोनोंके सम्बन्धमें सोचने लगे, भयभीत भी हुए, रोंगटे खड़े हो गये, फिर अचेत हो गये। नीचे बैठे हुए गाँवके लोग सायंतक उनकी प्रतीक्षा करके गाँव चले आये। आचार्यजीकी चेतना जब दूसरे दिन लौटी, तो वे गाँव गये। तबसे वे असाधारण रहने लगे, असीमित वार्ता करते, बारह बजे रातके बाद सोते। गाँवके पासके शहरमें वे सामान लेने गये, तो रिश्तेदारोंमें चले गये और तीन माह उपरान्त वापस आये। वे विश्वविद्यालयमें संस्कृत विभागाध्यक्ष थे। उन्होंने किसी तरह नौकरी पूरी की। वे संस्कृतके अच्छे कवि और वक्ता हैं। वे लगभग हर बार चित्रकूट रामायण मेला में आते हैं। एक वर्ष वे मेरे पासके कमरेमें रुके थे। आचार्यजीकी मानसिक स्थितिको देखते हुए उनकी पत्नी अब प्रायः साथमें रहती हैं।

यहाँ अन्य लोगोंको भी कभी दो पुरुष धनुष-बाण लिये, नंगे पाँव, नंगे वदन एक स्त्रीके साथ रातमें दिखायी पड़ते हैं।

चित्रकूटकी महासभा, जिसमें अयोध्या और मिथिलाका समाज रहा, उसका बड़ा महत्त्व है। भरत-रामका मिलन तो अद्भुत और अद्वितीय रहा; **न भूतो न भविष्यति**। मुनियोंकी मति भी अबला-सी हो जाती है। रामराज्यकी स्थापना चित्रकूटमें हुई। उस प्रारूपको भरतजीने अवधमें क्रियान्वित किया। जब राम अवधमें वापस गये तो उसीको आगे बढ़ाते रहे। चौदह वर्षतक रामके खड़ाऊँने राज्य किया, यह भरतजीकी देन है।

राज्यका कहीं लोभ, गर्व या दिखावा नहीं, निष्काम कर्मयोगी वे बने रहे।

चित्रकूटके कामदगिरिपर जहाँ सभा हुई थी, वह स्थल पूर्ण सुरक्षित है। राम-भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न, वसिष्ठ और जनकके स्थल सबसे मार्मिक हैं। जहाँ माताएँ बैठी थीं, उन्हींके आसपास सीताजी भी बैठी थीं। जहाँ कौसल्या और सुमित्रा बैठी थीं। वहाँका पत्थर घिसट गया और आज भी उक्त स्थानोंपर कड़ाहीके आकारके गड्ढे हैं। जहाँ कैकेयी बैठी थी—वहाँका पत्थर फट गया था। सभी चिह्न घेरेके भीतर सुरक्षित हैं, लोग कहते हैं कि कैकेयीका हृदय इतना कठोर था कि जहाँ वह बैठती थी तो वह स्थान (धरती-पत्थर) फट जाता था। यह पूर्ण सत्य न हो तो कुछ तो होगा ही, नहीं तो भूलक्कड संसार अबतक भूल गया होता।

वाल्मीकि-रामायणमें चित्रकूट-प्रसंग अति विस्तारसे है। तुलसीदासको चित्रकूटमें ही राम-लक्ष्मणके दर्शन हुए थे। हनुमान्जीका निर्देश मिला था। तुलसीदास चन्दन घिस रहे थे और रघुवीर अपने मस्तकपर चन्दन लगा रहे थे। तुलसीदासजीने चित्रकूटको ‘चतुर अहेरी’ कहा है—जो सभी विकारों, पापोंको दूर करके मनोकामनाकी पूर्ति करता है। यह सिद्धपीठ है। विपत्तिका साथी, अनाथोंका नाथ और अगृहीका गृह है। अब्दुल रहीमको जब अपदस्थ करके मुगलशासनने अवध सूबेसे निकाल दिया था, तो वे चित्रकूटमें ही रहते थे। उन्होंने कहा है कि अवधका नरेश (सूबेदार) चित्रकूटमें रह रहा है; जिसपर विपदा पड़ती है, वह यहाँ आता है। पर महामति प्राणनाथ १६८७ ई० में बिना विपदामें पड़े ही गये थे। श्रीरामनवमीके दिन वे कुछ अनुयायियोंके साथ चित्रकूट गये थे। वहाँ उन्होंने पावन वाणी कुलजमस्वरूपके अन्तिम ग्रन्थ ‘कयामतनामा’की रचना की। महाराज छत्रसालके विशेष अनुरोधपर वे पन्ना (मध्यप्रदेश) लौट गये। वहीं १६९४ ई० में उन्होंने समाधि ली। सुन्दरलालने उनकी वाणीको प्रतिष्ठित किया, जो आज भी है। महाराजा छत्रसाल भी वहाँ आये थे। परिक्रमा (कामदगिरि)—मार्गको उन्होंने व्यवस्थित और विस्तृत

सबके उपरान्त ढाकमें तीन पात ही रह गये। सृष्टिके विकाससे आजतकके मूल निवासी अपनी झुग्गी-झोपड़ी या खपरैलके मकानसे छोटी कुल्हाड़ी और डण्डा लेकर प्रायः स्त्रियाँ और सयानी लड़कियाँ जंगलकी ओर निकल जाती हैं। दोपहरतक जंगलसे लकड़ियोंका बोझ लिये लौटती हैं। दरवाजेपर रखकर

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

नहाती-खाती और सायं बाजारमें लकड़ी बेचती हैं, कुछ घूमकर, कुछ दरवाजेपर। रात गयेतक वे खाने-पीनेकी तथा अन्य आवश्यक सामग्री खरीदती हैं।

राम भी सबेरे निकल जाते, दिनभर बाहर रहते और सायं लौटकर कामदगिरिपर आते थे। अध्यात्म, भक्ति, माया और नरलीलाके नामपर चाहे जो रूपक तैयार किया जाय, पर रामका वनवासकाल महान् दुःखदायी था। तब चित्रकूट बिलकुल बीहड़ क्षेत्र रहा होगा। आज भी जंगलकी भूमिपर नंगे पाँव चलना महान् कष्टकारक है। कंकरीली, ऊबड़-खाबड़ भूमि, नदी-नालोंके प्रकोप, हिंसक पशुओं और जीव-जन्तुओंके संकट, वर्षा, धूप, गर्मी और शीतके प्रकोप भोगते रहे। गुरुखुल, कुश, कंटक, पत्थरसे आवृत धरतीपर चलते रहे। चित्रकूटका गुरुखुल यदि एक बार चुभ जाय तो उसकी असह्य पीड़ा कभी नहीं भुलायी जा सकती है। पृथ्वीपर एक पुरुष और एक स्त्रीको जितने दुःख मिल सकते हैं, वे सभी राम-लक्ष्मण और सीताको इस अवधिमें मिले।

सबको चित्रकूटने देखा है। कलियुगी कल्पनाओं

और उनकी उड़ानोंपर यह गम्भीर होकर सोचता है कि मूल रूप क्या है ? सबका कामदगिरि सबसे दृढ़ साक्षी है। आज यह कहता है कि सबको तुम अपनी विद्यासे ठग सकते हो, पर मुझको नहीं। यह स्थिर, दृढ़, प्रत्यक्षदर्शी, निष्पक्ष साक्षी और मौन वक्ता है। इसको किसीसे क्या लेना-देना है ? यह तो फक्कड़ अवधूत है, जिसके सामने सभी दाताओंके सिर झुक जाते हैं, वे याचक हो जाते हैं। इसीसे चित्त बार-बार चित्रकूट धाम जाने और कामदगिरिकी परिक्रमा करनेके लिये व्यग्र रहता है। यह है तो पाषाणसमूह, परंतु इसमें देवत्व है, अपने इतिहास, संस्कृति और भावधाराको सँजोकर रखने और योग्य पात्रको बाँटनेकी शक्ति है, यही तो देवत्वप्रदायिनी शक्ति है, वरना पाषाण तो पाषाण। इसी गुणके कारण यह आज भी पूज्य है। लोग चलकर ही नहीं, छः किलोमीटरकी लेटकर भी परिक्रमा करते हैं। बाल, वृद्ध और युवा सभी नंगे पाँव चलते हैं। बिना कुछ मिले ऐसा एक-दो कर सकते हैं, पर अनेक तो नहीं कर सकते हैं ?

‘सेइये सनेहसों बिचित्र चित्रकूट सो’

जहाँ बनू पावनी सुहावने बिहंग-मृग,
देखि अति लागत अनंदु खेत-खूँट-सो ।
सीता-राम-लखन-निवासु, बासु मुनिनको,
सिद्ध-साधु-साधक सबै बिबेक-बूट-सो ॥
झरना झरत झारि सीतल पुनीत बारि,
मंदाकिनि मंजुल महेसजटाजूट-सो ।
तुलसी जौं रामसों सनेहु साँचो चाहिये तौ,
सेइये सनेहसों बिचित्र चित्रकूट सो ॥

जहाँका वन अति पवित्र है और पशु-पक्षी अत्यन्त सुहावने हैं तथा जिसे खेतके टुकड़ेके समान (हरा-भरा) देखकर बड़ा आनन्द होता है, जहाँ सीता, राम और लक्ष्मणका निवास था, जहाँ अनेकों मुनिजन रहते हैं तथा जो सिद्ध, साधु और साधकोंके लिये विवेकरूपी वृक्षके समान है; जहाँ सभी झरनोंसे अति शीतल और पवित्र जल झरता रहता है तथा मन्दाकिनी नदी श्रीमहादेवजीके जटाजूटके समान जान पड़ती है। तुलसीदासजी कहते हैं—यदि तुम्हें भगवान् रामके सच्चे स्नेहकी चाह है, तो

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

महात्मा सदाशिव ब्रह्मेन्द्र

(श्रीरामलालजी श्रीवास्तव)

भगवती कावेरीके तटका अधिकांश क्षेत्र महात्मा सदाशिव ब्रह्मेन्द्रकी आध्यात्मिक साधना और तपस्यासे गौरवान्वित है। वे अपने समयके महान् अध्यात्मवादी थे, बहुत बड़ी आध्यात्मिक शक्ति थे। वे जन्मजात विरक्त और परम तपस्वी थे। उन्होंने कुम्भकोणम्के निकट भगवती कावेरीके तटपर स्थित तिरुविशनल्लूर ग्रामको अपनी पवित्र स्थितिसे धन्य किया था। इस गाँवको तंजौरके मराठा शासक शाहजीने छियालीस विद्वानोंको शाहजीपुरम्के नामसे प्रदान किया था। उपर्युक्त विद्वानोंमें मोक्ष सोमसुन्दर अवधानी भी एक थे, जो सदाशिव ब्रह्मेन्द्रके पिता थे। ये सात्त्विक स्वभावके व्यक्ति थे। सदाशिव ब्रह्मेन्द्रकी माताका नाम पार्वती था। सदाशिव ब्रह्मेन्द्रका बचपनसे ही विद्यामें अनुराग था। बाल्यावस्थामें ही उनका विवाह कर दिया गया था। पत्नीके घर आनेपर उन्हें गुरुकुलसे बुलाया गया। उनकी अवस्था उस समय इक्कीस सालकी थी। घरमें वधूके आगमनका उत्सव मनाया जा रहा था। उस दिन सदाशिव ब्रह्मेन्द्रको भोजनके पहले उपवासका आदेश दिया गया था। भोजनमें विलम्ब होते देखकर उनके मनमें विचार उठने लगा कि निस्संदेह वैवाहिक जीवन परम दुःखमय है। अभी इसका आरम्भमात्र है, पर मुझे भोजनतकके सम्बन्धमें विलम्ब सहना पड़ रहा है। वे तत्काल सावधान हो गये। उनके मनमें वैराग्य उमड़ पड़ा। उन्होंने सोचा कि परमात्माकी खोजमें लग जाना ही जीवनकी सार्थकता है। वे गुरुकी खोजमें निकल पड़े। उन्होंने कांचीपुरम्में कामकोटि मठके स्वामी परमशिवेन्द्रसे दीक्षा लेकर गेरुआ वस्त्र धारणकर संन्यास-आश्रममें प्रवेश किया।

महात्मा सदाशिव ब्रह्मेन्द्रके गुरु परमशिवेन्द्रके स्थानपर अध्यात्मज्ञानकी पिपासाकी शान्तिके लिये संत-महात्मा दूर-दूरसे आया करते थे। सदाशिव ब्रह्मेन्द्र उनसे वाद-विवादमें प्रायः उलझ जाया करते थे। परमशिवेन्द्रको यह बात पसन्द नहीं थी। एक दिन उन्होंने उलाहनेके स्वरमें शिष्यको सम्बुद्ध किया, 'तुम बोलना कब बन्द करोगे?' गुरुके कृपामय शब्द थे। वे तत्काल ही सजग

हो उठे; सदाके लिये उन्होंने मौन धारण कर लिया। वे 'मौनयोगी' के नामसे प्रसिद्ध हो गये। वे ब्रह्मचिन्तन और ग्रन्थ-रचनामें लग गये। उनकी 'आत्मविद्याविलास' नामकी रचनाने श्रृंगेरी मठके शिवाभिनवसच्चिदानन्द नृसिंह भारतीका उन्हें कृपापात्र बना दिया। दण्ड और कमण्डलुका परित्यागकर महात्मा सदाशिव ब्रह्मेन्द्र अवधूत हो गये, वे समाधिमें मग्न रहने लगे।

एक समयकी बात है, वे एक खेतकी मेंड़को तकिया बनाकर उसपर सिर रखकर आत्मचिन्तन कर रहे थे। खेतिहरोंने उनको इस स्थितिमें देखकर व्यंग्य किया कि 'यद्यपि इन्होंने विषयासक्तिका पूर्ण त्याग कर दिया है, तथापि आराममें इनकी आसक्ति बनी हुई है।' यह बात उन्हें लग गयी। खेतिहर तो चलते बने, पर सदाशिव ब्रह्मेन्द्र मेंड़का आश्रय छोड़कर ही आराम करने लगे। सिर हवाके आधारपर जमीनसे थोड़ा ऊपर स्थित था। खेतिहरोंने लौटते समय उनको इस हालतमें देखकर उनके यौगिक प्रदर्शनकी भर्त्सना की। महात्मा सदाशिव ब्रह्मेन्द्र सावधान हो गये। वे अवधूतवेषमें चल पड़े, योगसाधनाका भी उन्होंने परित्याग कर दिया। वे दिगम्बर हो उठे। शरीरपर न वस्त्र था, न रहनेके लिये घर था। अनायास खानेके लिये जो कुछ भी मिल जाता, उसे कररूप पात्रमें लेकर खा लिया करते थे। वे ब्रह्मोन्मादकी स्थितिमें इधर-उधर विचरण करने लगे। उन्होंने अपनी इस अवस्थाका विवरण अपने 'आत्मविद्याविलास' ग्रन्थमें प्रस्तुत किया है।

आन्तरमेकं किञ्चित् संततमनुसंदधन्महामौनी ।
करपटभिक्षामश्नन्नटति हि वीथ्यां जराकतिः कोऽपि ॥

संसारके प्रति पूर्ण अनासक्त होकर उन्होंने नैराश्यसे अपने आपको अलंकृत कर लिया। उनकी चित्तवृत्ति शान्त हो गयी, पेड़ोंके नीचे ही उन्होंने विश्रामस्थल बना लिया। वे निर्जन नदीके कुंजस्थलमें पुलिनरूप तल्पपर शयन करने लगे, वायु उनके लिये पंखा बन गयी तथा पूर्णचन्द्र ही उनके लिये दीपक था। यह थी उनकी ब्रह्मानन्दमयी अवस्था। ‘आत्मविद्याविलास’ में उनकी

सन्त सबकी सन्तष्टिका ध्यान रखते हैं। अपने जनको

कहा जाता है कि यतिराजशेखर सदाशिव ब्रह्मेन्द्र पृथ्वीपर दो सौ सालतक विराजमान रहे। ज्येष्ठ शुक्ला दशमीको भगवती कावेरीके तटपर करूरके निकट नेरूर नामक स्थानमें उन्होंने महासमाधि ली। निस्संदेह वे जन्मजात सिद्ध थे। वे सदा सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्माके चिन्तनमें तल्लीन रहकर विश्वातीत हो उठे।

मानव-जीवनमें सुख और दुःख

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

किसी भी कर्मके फलरूपमें प्राप्त परिस्थिति और भोगसमुदायमें राग नहीं करना चाहिये; क्योंकि जिस प्राप्त पदार्थमें मनुष्यका राग होता है, उसी जातिके अप्राप्त पदार्थोंका चिन्तन होता है तथा उनके संस्कार अंकित होकर वासनाका रूप धारण कर लेते हैं। उससे अन्तःकरण मलिन होता रहता है।

राग यानी आसक्ति, द्वेष यानी वैरभाव—इन दोनोंका समूल नाश करनेके लिये साधकको चाहिये कि इन्द्रिय-ज्ञानके अनुसार अनुकूल और प्रतिकूल प्रतीत होनेवाली परिस्थितियोंकी प्राप्तिमें जो सुख और दुःख होता है, उनमें किसी दूसरेको कारण न समझे। दूसरे व्यक्तियोंको, क्षुद्र जीवोंको या पदार्थोंको सुख-दुःखका कारण मान लेनेपर उनमें आसक्ति और वैरभाव होना अनिवार्य है। जबतक मनुष्यका किसी व्यक्तिमें या पदार्थमें राग-द्वेष विद्यमान रहता है, तबतक चित्त शुद्ध नहीं होता। उसके मनमें अनावश्यक संकल्प और व्यर्थ चिन्तन होता रहता है।

वास्तवमें यदि देखा जाय तो सुख-दुःखमें दूसरा व्यक्ति, प्राणी या पदार्थ हेतु हैं भी नहीं। कोई पूछे कि कौन हेतु है, तो इस विषयकी मान्यता तीन भागोंमें बाँटी जा सकती है—

(१) यह कि पूर्वकृत अच्छे और बुरे कर्मोंके फलरूपमें ही समस्त प्राणियोंको अनुकूल और प्रतिकूल भोग प्राप्त होते हैं। दूसरा कोई कारण नहीं है। यह मान्यता तो उन मनुष्योंकी होती है, जो देहाभिमानी और कर्मासक्त हैं। अपनी इस मान्यताके अनुसार उनका बुरे कामोंको छोड़कर, अच्छे कर्मोंमें प्रवृत्त होनेका निश्चय दृढ़ होता है, जो उनको उन्नतिशील बनानेमें सहायक होता है। इसलिये यह मान्यता भी एक प्रकारसे अच्छी है।

(२) सुख और दुःखकी प्राप्ति का कारण एकमात्र मनुष्य का प्रमाद अर्थात् प्राप्त विवेक का आदर न करना यानी उसका सदुपयोग न करना ही है, दूसरा कुछ नहीं; क्योंकि विचारवान् साधक को जब किसी प्रकार की शारीरिक या मानसिक प्रतिकूलता प्राप्त होती है, तब वह उससे दुखी नहीं होता, बल्कि यह समझकर प्रसन्न रहता है कि प्रतिकूलता ही मनुष्य के जीवन का उन्नत करने वाला

हैं। जिसके जीवनमें प्रतिकूलताका अनुभव नहीं होता, उसकी उन्नतिकी ओर प्रगति नहीं होती। यदि प्रतिकूल परिस्थिति पैदा न होती तो शरीर और संसारसे अहंता-ममताका दूर होना प्रायः सम्भव ही नहीं था। अतः प्रतिकूल परिस्थिति तो शरीर और संसारसे अलग करनेवाली है। जब शरीरमें अहंभाव और उससे सम्बन्धित जगत्में मेरापन न रहे, तब कोई भी परिस्थिति मनुष्यको सुख या दुःख देनेवाली हो ही नहीं सकती। यह मान्यता उन विचारशील साधकोंकी होती है, जो एकमात्र प्रमादको ही अहंता-ममताका हेतु समझकर अपने प्राप्त विवेकका आदर करनेवाले हैं।

(३) तीसरी मान्यता हर-एक परिस्थितिमें सर्वत्र और सर्वदा भगवान्की कृपाका दर्शन करनेवाले, भगवान्पर निर्भर परमविश्वासी भक्तोंकी होती है। वे अनुकूल परिस्थितिमें तो इस भावनासे भगवान्की अहैतुकी कृपाका अनुभव करके उनके प्रेममें विभोर हो जाते हैं कि वे परम सुहृद् प्रभु मेरी हर-एक आवश्यकताका कितना अधिक ध्यान रखते हैं। मुझ-जैसे अधम प्राणीपर भगवान्की कितनी दया है, जो अपनी सेवा कराकर मुझे अपना प्रेम प्रदान करनेके लिये यह सामग्री और इनके उपयोगकी योग्यता दी है एवं प्रतिकूल परिस्थिति प्राप्त होनेपर वे यह सोचते हैं कि इस शरीरमें और संसारमें जो मैंने प्रमादवश सुख मान लिया था, जिसके कारण मैं अपने परम सुहृद् प्रभुसे विमुख हो रहा था, उस शरीर और संसारसे विमुख करके अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये भगवान्ने कृपापूर्वक यह परिस्थिति दी है। भगवान्की कैसी अनुपम दया है कि वे अपने दासको हर समय हर-एक प्रकारसे अपना प्रेम प्रदान करनेके लिये उत्सुक रहते हैं। इस प्रकार प्रभुकी कृपाका अनुभव करता हुआ उनके प्रेममें विभोर होता रहता है।

उपर्युक्त तीनों प्रकारकी ही मान्यता अपने-अपने अधिकारके अनुसार प्राणीको उन्नतिशील बनाती है। इसके विपरीत जो दूसरे प्राणियोंको या पदार्थोंको अपने सुख और दुःखका हेतु मानता है, उसका सब प्रकारसे पतन होता है, क्योंकि जिस प्राणी या पदार्थकी मान्यता

संत-वचनामृत

(वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे)

❖ पापियोंके मनमें पाप, पुण्यवानोंके मनमें पुण्य और भक्तोंके हृदयमें भगवान् प्रेरणा करते हैं। प्रभु-प्रेरणासे मंगल-ही-मंगल होता है। अपने मनको जब हम भगवान्से मिलाकर रखेंगे तब भगवान् प्रेरणा करेंगे। भगवत्-प्रेरित भक्तके सभी कार्य दिव्य होंगे। रैदासजी प्रभुकी प्रेरणासे भगवान्की सेवा-पूजा करते थे तो प्रभुके मनमें रैदासकी कीर्ति बढ़ानेकी इच्छा हुई। काशीके विद्वान् ब्राह्मणोंने विरोध किया। यह भी प्रभुकी प्रेरणा थी। ब्राह्मणोंने राजासे शिकायत की। रैदासको राजदरबारमें बुलाया गया। रैदासजीने कहा प्रभु सेवा स्वीकार करते हैं। अपनी सेवाकी प्रेरणा प्रभुने दी है। सभामें सिंहासनपर प्रभु पधराये गये। राजाने कहा—‘जो कोई अपनी प्रार्थनासे प्रभुको बुला लेगा, वह पूजाका अधिकारी होगा।’

पण्डितोंने मन्त्र पढ़कर बुलाया, पर प्रभु नहीं आये। रैदासकी प्रार्थना सुनकर उनके पास आ गये। उनकी वाणीमें दीनता थी। उन्होंने कहा कि प्रभो! आप हमसे अलग न होइये। या तो शीघ्र मेरे पास आ जाइये या मुझे अपने पास बुला लीजिये। मैं इस शरीरको त्याग करके आपके पास आकर आपकी सेवा करूँ। सेवामें ही मुझे रखिये। सेवायोग्य शरीर दीजिये। प्रभु रैदासकी गोदमें आ गये। रैदासकी सभामें जय-जयकार हुई। राजा-प्रजाने रैदासको प्रणाम किया। रैदास सब कार्य प्रभुकी प्रेरणासे करते थे, अतः प्रभुने रैदासका पक्ष लिया।

❖ भक्तजन भगवान्को भगवान् मानकर ही भक्ति करते हैं। इसी तरह सन्तको सन्त मानकर उसकी भक्ति की जाती है। नहीं तो भगवान् और भक्तजन अपनेको सर्वथा छिपाते रहते हैं, एक क्षण ऐश्वर्य—ईश्वरता दीख पड़ेगी, दूसरे क्षण भगवान् उसे छिपा लेते हैं। श्रीकृष्ण अर्जुन, युधिष्ठिर आदिके सामने अपनेको छिपाते थे। उनके साथ हँसने-बोलने, खाने-पीनेके समयमें वे लोग अनुभव करते थे कि मेरे मित्र हैं, मेरे भाई हैं। श्रीनारदजीने यज्ञके समय युधिष्ठिरको प्रह्लाद-

चरित्र सुनाया और कहा—‘ये देवकीनन्दन ही नृसिंह हैं।’ श्रीकृष्णने कहा—‘आप क्यों मेरे पेटपर लात मार रहे हैं। भाई-मित्र मानते हैं, तो साथ-साथ खिलाते-पिलाते हैं। ईश्वर मानेंगे तो अलमारीमें रखकर दो-चार बताशोंका भोग लगाकर शयन करा देंगे। इसलिये मित्र या भ्राता माननेसे मैं विशेष प्रसन्न रहता हूँ।’

❖ श्रीप्रभुकी प्रसन्नताका फल है कि बुद्धि शुद्ध रहे। विषयोंकी आशा न रहे। संसारी सम्पत्तिकी प्राप्ति—यह रामजीकी कृपाका उत्तम फल नहीं है। भक्तजन संसारसे विरक्त रहते हैं। प्रभुकी इच्छा होती है तो वे लौकिक सम्पत्ति देकर लोकमें भक्तका सम्मान बढ़ाते हैं।

‘करी गोपालकी सब होय।

जो अपनौ पुरुषारथ मानै झूठो है सब सोय॥’

❖ एक बादशाहका स्वभाव अति क्रूर था। थोड़े अपराधपर भारी दण्ड देता था। एक दिन भोजन परोसते समय रसोइयासे शाकका छींटा उसके पाजामेपर पड़ गया। बादशाह आग-बबूला हो गया, तब रसोइयाने सारा शाक उसके ऊपर उड़ेल दिया। क्रुद्ध होकर बादशाहने पूछा—‘तूने ऐसा क्यों किया?’ तब उसने कहा—छींट पड़ी, थोड़ा अपराध, भारी दण्ड। आप फाँसी देते तो लोग आपकी निन्दा करते, अतः मैंने अपराधको बड़ा कर दिया, आप फाँसी देंगे तो आपकी निन्दा न होगी। मेरी निन्दा होगी। यह सुनकर बादशाहने उससे शिक्षा ग्रहण की, स्वभावको बदल लिया। सच्चा सेवक स्वामीकी निन्दा नहीं चाहता, स्वामीके स्वभावमें सेवककी निष्ठाने परिवर्तन किया।

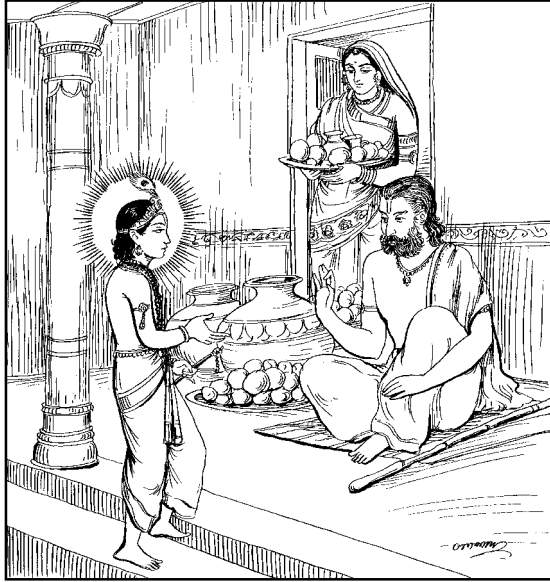
❖ सन्तोंसे, बड़ोंसे आशीर्वाद माँगना चाहिये, इससे दैन्य सुरक्षित रहता है। प्रेमीभक्त मात्र सप्रेम प्रणाम करते हैं, उन्हें बिना माँगे ही अभीष्टकी प्राप्ति हो जाती है। प्रभु सबके स्वामी हैं, रक्षक हैं, पर जबतक हममें दास्य नहीं होगा, हम रक्ष्य न होंगे, तबतक वे स्वामी बनकर रक्षा नहीं करेंगे। [‘परमार्थके पत्र-पुष्प’से साभार]

अर्थात् च्यवन ऋषिने राजा नहुषसे कहा—अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले हे राजेन्द्र! मैं इस संसारमें गौओंके समान कोई धन नहीं देखता हूँ। वीर भूपाल! गौओंके नाम और गुणोंका कीर्तन तथा श्रवण करना, गौओंका दान देना और उनका दर्शन करना— इनकी शास्त्रोंमें बड़ी प्रशंसा की गयी है। ये सब कार्य सम्पूर्ण पापोंको दूर करनेवाले और परम कल्याणकी प्राप्ति करानेवाले हैं। गौएँ सदा लक्ष्मीकी जड़ हैं। उनमें पापका लेशमात्र भी नहीं है। गौएँ ही मनुष्योंको सर्वदा अन्न और हविष्य देनेवाली हैं। स्वाहा और वषट्कार सदा गौओंमें ही प्रतिष्ठित रहते हैं। गौएँ ही सदा यज्ञका संचालन करनेवाली तथा उसका मुख हैं। वे विकाररहित

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

दिव्य अमृत धारण करनेवाली और दुहनेपर अमृत ही देती हैं। वे अमृतकी आधारभूत हैं, सारा संसार उनके सामने नतमस्तक होता है। गौएँ स्वर्गकी सीढ़ी हैं, गौएँ स्वर्गमें भी पूजी जाती हैं। गौएँ समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली देवियाँ हैं, उनसे बढ़कर कोई दूसरा नहीं है।

ब्रह्मवैवर्तपुराणके श्रीकृष्णजन्म-खण्डमें भगवान्



श्रीकृष्ण नन्दबाबाको गौओंकी महिमा बताते हुए कहते हैं—

सर्वे देवा गवामङ्गे तीर्थानि तत्पदेषु च ।

तद्गुह्येषु स्वयं लक्ष्मीस्तिष्ठत्येव सदा पितः ॥

गोष्पदाक्तमृदा यो हि तिलकं कुरुते नरः ।

तीर्थस्नातो भवेत् सद्यो जयस्तस्य पदे पदे॥

गावस्तिष्ठन्ति यत्रैव तत्तीर्थं परिकीर्तितम् ।

प्राणांस्त्यक्त्वा नरस्तत्र सद्यो मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ॥

अर्थात् गोमाताके शरीरमें समस्त देवगण निवास करते हैं और गोमाताके चरणोंमें समस्त तीर्थ निवास करते हैं। गोमाताके गुह्यभागमें लक्ष्मी सदा रहती हैं। गोमाताके पैरोंमें लगी हुई मिट्टीका तिलक जो अपने मस्तकपर लगाता है, वह तत्काल तीर्थजलमें स्नान करनेका पुण्य प्राप्त करता है और उसकी पद-पदपर विजय होती है। जहाँपर गौएँ रहती हैं, उस स्थानको तीर्थभूमि कहा गया है। ऐसी भूमिमें जिस मनुष्यकी मृत्यु होती है, वह

गवां दृष्ट्वा नमस्कृत्य कुर्यात्वेव प्रदक्षिणम्।

प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥

मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदाः ।

वृद्धिमाकाङ्क्षता पुंसा नित्यं कार्याः प्रदक्षिणाः ॥

गोमाताका दर्शन एवं नमस्कार करके उनकी परिक्रमा करे। ऐसा करनेसे सातों द्वीपोंसहित भूमण्डलकी प्रदक्षिणा हो जाती है। गौएँ समस्त प्राणियोंकी माताएँ एवं सुख देनेवाली हैं। वृद्धिकी आकांक्षा करनेवाले मनुष्यको नित्य गौकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये।

तीर्थस्नानेषु यत्पुण्यं यत्पुण्यं विप्रभोजने ।

सर्वव्रतोपवासेषु सर्वेष्वेव तपःसु च ॥

यत्पुण्यं च महादाने यत्पुण्यं हरिसेवने ।

भुवः पर्यटने यत्तु वेदवाक्येषु यद्भवेत् ॥

यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु दीक्षायां च लभेन्नरः ।

तत्पुण्यं लभते सद्यो गोभ्यो दत्त्वा तृणानि च ॥

गोमाताको तृण खिलानेका बहुत ही पुण्य बताया गया है। कहा है—तीर्थस्थानोंमें जानेसे, ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे जो पुण्य होता है तथा सभी व्रतों और उपवासोंमें जो पुण्य स्थित है, महादान देनेमें जो पुण्य है, श्रीहरिकी पूजामें जो पुण्य है, पृथ्वीकी परिक्रमामें जो पुण्य है तथा समस्त सत्य वाक्योंमें—शास्त्रीय वेदवाक्योंमें जो पुण्य है और मनुष्यको यज्ञोंमें यज्ञ-दीक्षा ग्रहण करनेसे जो पुण्य अर्जित होता है, वे सभी पुण्य केवल गायोंको तृण खिलानेभरसे तत्क्षण ही मिल जाते हैं।

आज त्रिलोकीमें गोमाताके अतिरिक्त ऋषि, मुनि, देव, मानवसहित ऐसा कोई प्राणी नहीं है, जो अपनी निःश्वासमें प्राणवायु (ऑक्सीजन) देता है। गोमाताके अतिरिक्त त्रिलोकीमें ऐसा कोई प्राणी नहीं है, जिनका मल-मूत्र पवित्र हो, ग्राह्य हो, पूजामें काम आता हो, गोमाताका गोबर, गोमूत्र, धरतीमाताका शुद्ध आहार है। आजकी आवश्यकता है कि ऐसी हमारी पूज्य गोमाताके प्रति कृतज्ञभाव रखते हुए हम उनके चरने, विचरण करनेके लिये गोचर भूमिकी उदारतापूर्वक व्यवस्था करें, उन्हें कत्लखानोंमें जानेसे बचायें और उनके लिये चारे

साधनोपयोगी पत्र

(१)

जीवनको भगवत्परायण बनायें

महोदय! सादर हरिस्मरण, आपका पत्र मिला। समाचार ज्ञात हुए।

आपने लिखा कि अब मैं संसारमें अकेला ही रह गया हूँ, इसका यह भाव समझमें आया कि आपके बाल-बच्चे और स्त्री आदि कोई नहीं रहे हैं; क्योंकि वैसे तो संसारमें कोई भी अकेला कैसे रह सकता है?

अब बात यह है कि इस परिस्थितिमें आपको क्या करना चाहिये, यह आप जानना चाहते हैं। उसका उत्तर मैं अपनी समझके अनुसार लिख रहा हूँ। आप उचित समझें तो इसे काममें ला सकते हैं।

(१) आपको यह मानना चाहिये कि 'भगवान्ने संसारका मोह छुड़ाकर मुझे अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये विशेष कृपा करके मुझे यह परिस्थिति प्रदान की है। कुटुम्बके रहते हुए उन सबको अपना न मानना, उनमेंसे ममता उठाकर भगवान्को अपना और उनका होकर रहना बड़ा ही कठिन था। अतः अबसे मुझे अन्य किसीको भी अपना नहीं मानना है एवं किसीसे सम्बन्ध नहीं जोड़ना है; एकमात्र भगवान् ही मेरे हैं।'

(२) आपने जो यह निश्चित किया कि 'भविष्यमें सांसारिक झगड़ोंमें नहीं पड़ना है'—यह बहुत ही अच्छा है। अब आप जो कुछ करें, उसे ईश्वरकी सेवा और उन्हींका काम समझकर उन्हींकी प्रसन्नताके लिये करें। अपने सुख-दुःखका कारण किसी भी व्यक्तिको, किसी भी वस्तुको, किसी भी परिस्थितिको और किसी भी अवस्थाको न मानें। ऐसा समझें कि जो कुछ अपने-आप हो रहा है, वह भगवान्की इच्छासे ही हो रहा है और उसीमें मेरा कल्याण भरा हुआ है। भगवान्ने जो कुछ शरीर-इन्द्रियाँ और मन-बुद्धि तथा वस्तु आदि मुझे

दे रखे हैं, सब उनके हैं, इन सबको उन्हींकी प्रेरणाके अनुसार जगत्-जनार्दनकी सेवामें लगा देना है। जिस शरीरको अबतक मैं अपना समझता था, वह भी उन्हींकी वस्तु है, इस दृष्टिसे इसका पालन-पोषण भी उन्हींकी सेवाके अन्तर्गत है। मुझे अपने सुख-भोगके लिये कुछ भी नहीं चाहिये। मेरे तो एकमात्र भगवान् हैं और उनका प्रेम ही एकमात्र मेरा परम सुख और जीवन है। इस प्रकार संसारसे पूर्णतया निराश होकर एकमात्र प्रभुपर निर्भर हो जाना, प्रत्येक परिस्थितिमें उनकी अहैतुकी कृपाका अनुभव करते हुए उनके प्रेममें विभोर रहना और भगवान्के प्रेरणानुसार उनकी वस्तुओंको उन्हींकी प्रसन्नताके लिये उनके काममें लगाते रहना तथा उसके बदलेमें किसीसे भी किसी प्रकारके सुखभोगकी चाह न करना एवं किसी प्रकारका अभिमान भी नहीं करना—यह साधन बहुत ही अच्छा मालूम होता है।

काम-क्रोध आदि अवगुणोंके विषयमें लिखा कि 'इन शत्रुओंका नाश नहीं हुआ है', सो भगवत्-शरणागत और इच्छारहित साधकके सामने इनका वश नहीं चलता। जबतक मनुष्य अपने अधिकारकी पूर्ति दूसरोंसे चाहता है, तभीतक राग-द्वेष अपना बल दिखा सकते हैं। जब साधक दूसरोंके अधिकारकी धर्मानुकूल पूर्ति करना ही अपना ध्येय बना लेता है, किसीसे कुछ लेना नहीं चाहता और अपना कोई अधिकार भी नहीं मानता, तब उसके अहंता-ममताका अभाव हो जानेपर राग-द्वेषादि शत्रुओंका नाश अपने-आप हो जाता है।

आपने जीवनका उद्देश्य पूछा, सो मनुष्य-जीवनका उद्देश्य भगवान्को प्राप्त कर लेना ही है। उसकी प्राप्तिका उपाय शास्त्रोंमें कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग बताया गया है। जिस अधिकारीको जो अनुकूल पड़े, उसके लिये वही सरल है। प्रायः अधिक मनुष्योंके लिये भक्तिप्रधान कर्मयोग ही सरल पड़ता है। उसका खुलासा

रही स्त्रीके आग्रहकी बात, तो वह यदि मोहवश आग्रह करती हो, तो उसका कोई महत्त्व नहीं है। अतः भगवान्‌के गुण-प्रभावको जाननेवाले निष्कामी भक्तके द्वारा माँगना नहीं बनता; अर्थार्थी भक्त यदि माँगे तो कोई दोषकी बात नहीं है। दूसरोंसे माँगनेकी अपेक्षा भगवान्‌से विश्वासपूर्वक माँगना अच्छा है। शेष प्रभूकृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२०, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, भाद्रपद-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ८।३६ बजेतक	मंगल	श्रवण दिनमें ८।१६ बजेतक	४ अगस्त	कुम्भराशि रात्रिमें ८।५२ बजेसे, पंचकारम्भ रात्रिमें ८।५२ बजे।
द्वितीया " ९।२४ बजेतक	बुध	धनिष्ठा ,, ९।२९ बजेतक	५ "	अशून्य शयन-व्रत।
तृतीया " १०।३८ बजेतक	गुरु	शतभिषा ,, ११।९ बजेतक	६ "	भद्रा दिनमें १०।१ बजेसे रात्रिमें १०।३८ बजेतक, कजली (कजरी) तीज।
चतुर्थी " १२।१७ बजेतक	शुक्र	पू०भा० ,, १।१६ बजेतक	७ "	मीनराशि प्रातः ६।४४ बजेसे, संकष्टी (बहुला) श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ९।१३ बजे।
पंचमी " २।११ बजेतक	शनि	उ०भा० ,, ३।३९ बजेतक	८ "	रक्षापंचमी, मूल दिनमें ३।३९ बजेसे।
षष्ठी रात्रिशेष ४।१४ बजेतक	रवि	रेवती सायं ६।१६ बजेतक	९ "	भद्रा रात्रिशेष ४।१४ बजेसे, मेषराशि सायं ६।१६ बजेसे, पंचक समाप्त सायं ६।१६ बजे, हलषष्ठी (ललहीछठ), श्रीचन्द्रषष्ठी, चन्द्रोदय रात्रिमें १०।१४ बजे।
सप्तमी अहोरात्र	सोम	अश्वनी रात्रिमें ८।५१ बजेतक	१० "	भद्रा सायं ५।१४ बजेतक, मूल रात्रिमें ८।५१ बजे।
सप्तमी प्रातः ६।१४ बजेतक	मंगल	भरणी ,, ११।१९ बजेतक	११ "	श्रीकृष्णजन्माष्टमी-व्रत।
अष्टमी दिनमें ८।१ बजेतक	बुध	कृत्तिका ,, १।३० बजेतक	१२ "	वृषराशि प्रातः ५।५२ बजेसे, उदयव्यापिनी अष्टमी मतावलम्बी वैष्णवोंका श्रीकृष्णजन्मव्रत, गोकुलाष्टमी।
नवमी " ९।२७ बजेतक	गुरु	रोहिणी रात्रिमें ३।१५ बजेतक	१३ "	उदयव्यापिनी रोहिणी मतावलम्बी वैष्णवोंका श्रीकृष्णजन्मव्रत, भद्रा रात्रिमें ९।५७ बजेसे।
दशमी " १०।२७ बजेतक	शुक्र	मृगशिरा रात्रिशेष ४।३४ बजेतक	१४ "	भद्रा दिनमें १०।२७ बजेतक, मिथुनराशि दिनमें ३।५५ बजेसे।
एकादशी " १०।५८ बजेतक	शनि	आर्द्रा रात्रिशेष ५।२१ बजेतक	१५ "	स्वतन्त्रता-दिवस, जया एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी " १०।५७ बजेतक	रवि	पुनर्वसु अहोरात्र	१६ "	कर्कराशि रात्रिमें ११।३५ बजेसे, प्रदोषव्रत।
त्रयोदशी " १०।२७ बजेतक	सोम	पुनर्वसु प्रातः ५।४० बजेतक	१७ "	भद्रा दिनमें १०।२७ बजेसे रात्रिमें ९।५७ बजेतक, मूल रात्रिशेष ५।२९ बजेसे।
चतुर्दशी " ९।२७ बजेतक	मंगल	आश्लेषा रात्रिशेष ४।५२ बजेतक	१८ "	सिंहराशि रात्रिमें ८।४ बजेसे, श्राद्धादिकी अमावस्या, कुशोत्पाटिनी अमावस्या।
अमावस्या " ८।३ बजेतक	बुध	मघा रात्रिमें ३।५७ बजेतक	१९ "	अमावस्या, मूल रात्रिमें ३।५७ बजेतक।

सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२०, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, भाद्रपद-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा प्रातः ६।१८ बजेतक	गुरु	पू०फा० रात्रिमें २।४२ बजेतक	२० अगस्त	× × × ×
तृतीया रात्रिमें १।५८ बजेतक	शुक्र	उ०फा० „ १।१३ बजेतक	२१ „	कन्याराशि दिनमें ८।१९ बजेसे, हरितालिका (तीज)-व्रत ।
चतुर्थी „ ११।३४ बजेतक	शनि	हस्त „ ११।३ बजेतक	२२ „	भद्रा दिनमें १२।४७ बजेसे रात्रिमें ११।३४ बजेतक, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रदर्शन निषिद्ध ।
पंचमी „ ९।६ बजेतक	रवि	चित्रा „ ९।५७ बजेतक	२३ „	तुलाराशि दिनमें १०।४७ बजेसे, ऋषिपंचमी ।
षष्ठी सायं ६।४० बजेतक	सोम	स्वाती „ ८।१८ बजेतक	२४ „	लोलार्कषष्ठीव्रत ।
सप्तमी दिनमें ४।२१ बजेतक	मंगल	विशाखा „ ६।४६ बजेतक	२५ „	भद्रा दिनमें ४।२१ बजेसे रात्रिमें ३।१६ बजेतक, वृश्चिकराशि दिनमें १।९ बजेसे ।
अष्टमी „ २।१२ बजेतक	बुध	अनुराधा सायं ५।२५ बजेतक	२६ „	श्रीराधाष्टमीव्रत, मूल सायं ५।२५ बजेसे ।
नवमी „ १२।१६ बजेतक	गुरु	ज्येष्ठा दिनमें ४।१९ बजेतक	२७ „	धनुराशि दिनमें ४।१९ बजेसे, महानन्दा नवमीव्रत ।
दशमी „ १०।४२ बजेतक	शुक्र	मूल „ ३।३५ बजेतक	२८ „	भद्रा रात्रिमें १०।६ बजेसे, मूल दिनमें ३।३५ बजेतक ।
एकादशी „ ९।३१ बजेतक	शनि	पू०षा० „ ३।१२ बजेतक	२९ „	भद्रा दिनमें ९।३१ बजेतक, पद्मा एकादशीव्रत (सबका), मकरराशि रात्रिमें ९।१३ बजेसे, श्रीवामनद्वादशीव्रत ।
द्वादशी „ ८।४६ बजेतक	रवि	उ०षा० „ ३।१७ बजेतक	३० „	प्रदोषव्रत, महारविवारव्रत ।
त्रयोदशी „ ८।३० बजेतक	सोम	श्रवण „ ३।५२ बजेतक	३१ „	कुम्भराशि रात्रिशेष ४।२५ बजेसे, पंचकारम्भ रात्रिशेष ४।२५ बजे ।
चतुर्दशी „ ८।४६ बजेतक	मंगल	धनिष्ठा सायं ४।५८ बजेतक	१ सितम्बर	भद्रा दिनमें ८।४६ बजेसे रात्रिमें ९।९ बजेतक ।
पूर्णिमा „ ९।३४ बजेतक	बुध	शतभिषा „ ६।२२ बजेतक	२ „	पूर्णिमा, महालयारम्भ, प्रतिपदाश्राद्ध ।

पढ़ो, समझो और करो

(୧)

(२)

एक भारतीय भिखारीका आदर्श चरित्र

आजसे लगभग ६० वर्ष पहलेकी घटना है, एक धनी मारवाड़ी दम्पती हरिद्वारसे केदार-बदरीधाम जा रहे थे। डेढ़ घण्टेकी पहाड़ी यात्राके बाद उन्हें प्यास लगी और वे निकटके जलसत्रके पास गये। वहाँ हाथ-पैर धोने तथा पानी पीनेकी व्यवस्था थी। वहाँ वे दोनों हाथ-मुँह धोकर फिर आगे चल दिये। दो घण्टेतक चलनेके बाद उस महिलाको स्मरण हुआ कि भूलसे उसने हीरेकी अपनी अँगूठी जलसत्रपर छोड़ दी है। तुरंत वे दोनों लौटकर वहाँ गये। उनके आनन्द और आश्चर्यका ठिकाना न रहा, जब उन्होंने देखा कि एक लम्बा भिखारी चिथड़े पहने था, और एक तागेसे उस अँगूठीको अपनी बाँहमें बाँधकर अपनी बाँह ऊपर करके चिल्ला रहा था—‘किसकी अँगूठी है ? किसकी अँगूठी है ?’ जब दम्पती उस भिक्षुकके पास पहुँचे और बोले कि ‘अँगूठी मेरी है’ तो भिखारीने तुरंत उस अँगूठीको उन्हें लौटा दिया और कहा—‘तुम बड़े बदमाश हो ! जबसे तुम्हारी अँगूठी मिली, तबसे हमारा खाना-पीना कुछ नहीं हुआ। मैं तो लगातार इसी तरह चिल्लाता रहा।’

मारवाड़ी महोदय अपनी अँगूठी पाकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपना तोड़ा निकाला और वे भिक्षुकको चालीस रुपये पुरस्कार देने लगे। उस जमानेमें चालीस रुपयेमें एक तोला सोना मिल जाता था। परंतु पुरस्कारकी बात सुनते ही भिखारी क्रोधित होकर चिल्लाया— ‘रुपये! किसलिये, क्या मैं चोर हूँ, यह तुम्हारी अँगूठी है और मैंने इसे तुम्हें दे दिया। उसके लिये मैं रुपये क्यों लूँ?’ ऐसा कहकर वह चला गया। धनी सौदागर आश्चर्यचकित हो वहाँ खड़ा रहा। यह है, एक भारतीय भिखारीका आदर्श चरित्र।—शिशिर कुमार सेन

ख़ुदा आप-जैसा ही कोई होगा

घटना सन् २००८ ई० की है। उस समय मैं एक व्यवसायके कारण चेन्नईके एक प्रतिष्ठानसे जुड़ा हुआ था। कुछ आपसी विचार-विमर्शके लिये मुझे प्रतिष्ठानसे बार-बार बुलावा आ रहा था, जाना भी जरूरी था। किंतु इन्हीं दिनों एक दुर्घटनाके फलस्वरूप मेरा एक पैर टूट गया था। बिना घोड़ी (एक लकड़ीका उपकरण, जिससे बगलमें रखकर चला जाता है) -के मैं चल नहीं सकता था और जाना भी जरूरी था। सो मैंने एक टैक्सी कर ली और सुबह ७ बजे मैं पत्नी और पिताके साथ चेन्नईके लिये रवाना हो गया। हम यथा समय चेन्नई प्रतिष्ठानमें पहुँच गये। वहाँ सभी अधिकारी और बड़े साहब भी मिल गये। सारा काम १-२ घण्टेमें पूरा हो गया। टैक्सी साथ थी ही, सो वहाँके प्रख्यात शिव मन्दिरके दर्शन किये और करीब ३ बजे हम बेंगलूरुके लिये रवाना हो गये। रास्तेमें वेल्लोरमें भगवती महालक्ष्मीका स्वर्ण-मन्दिर देखनेहेतु चले गये। वहाँ दर्शनार्थियोंकी भारी भीड़ थी। मन्दिर परिसर भी बहुत विशाल था। जानकारी करनेसे पता चला कि श्यामल किशोरके रूपमें हमारे इष्टदेव ही आये थे। संसार-सागरसे पार उतारनेवाले वे प्रभु ही हमें झीलमें डूबनेसे बचाने और हमारी नैया पार लगाने आये थे। स्वर्ण-मन्दिर १५ टन सोनेसे बना है। मन्दिरकी विशालता अपना परिचय स्वयं दे रही थी, महालक्ष्मीकी मूर्ति अत्यन्त सुन्दर एवं मनोहारी थी। मन्दिर देखकर हम ७.३० बजे बेंगलूरुके लिये रवाना हो गये। अनुमानके अनुसार लगभग १२ बजे बेंगलूरु पहुँचना था। किंतु हमारा टैक्सी ड्राइवर लोभी प्रवृत्तिका होनेकी वजहसे सेट किये पेट्रोल पंपपर डीजल बेच रहा था। यद्यपि रास्ता साफ था। किंतु जब बेंगलूरु ३० किलोमीटर रह गया, तब अचानक गाड़ीके नीचे भागमें टक्कर लगी और डीजलकी

टकी फूट गयी, सारा डीजल बह गया, गाड़ी खड़ी हो गयी। इससे हम भी चिन्तामें पड़ गये कि अब क्या होगा! तब ड्राइवर बोला—‘साहब! मुझे पाँच सौ रुपये दे दो, मैं सुधरवानेकी व्यवस्था करता हूँ’। कोई अन्य उपाय न देखकर मैंने उसे पाँच सौ रुपये दे दिये, वह रुपये लेकर जो गया, फिर आया ही नहीं। अब हम घबरा गये, रात गहराती जा रही थी, अँधेरा बढ़ रहा था। यद्यपि गाड़ी मुख्य सड़कपर ही थी और बगलसे कई बसें, कारें, टैक्सियाँ आ-जा रही थीं। किंतु कोई भी रुकनेको तैयार नहीं। ऐसी हालतमें सिवाय भगवान्‌के और कौन सहाय हो सकता था; सो ‘**दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी**’ का जाप करने लगे। इधर मेरे पिताजी घोड़ी बगलमें लगाकर सड़कपर खड़े हो गये कि कोई तो रुके। किंतु कोई नहीं रुका। तभी एक अनहोनी—सी घटना हुई, अचानक एक टैक्सी हमसे करीब पन्द्रह-बीस फुट दूर जाकर खड़ी हुई। तब पिताजी उसके पास दौड़े-दौड़े गये। उसमें एक सज्जन बैठे थे। उन्होंने पूछा ‘क्या बात है?’ तब पिताजीने सारे हालात बयान किये। तब उन्होंने पूछा कि ‘कितने जन हो?’ पिताजीने कहा कि ‘मैं, मेरा बेटा एवं बहू—हम तीन जन हैं।’ तो उन्होंने तत्काल आनेको कहा। हम भी जल्दी-जल्दी उनकी टैक्सीमें पीछे बैठ गये और टैक्सी चल पड़ी। थोड़ी देर बाद उन्होंने बताया कि ‘यह जगह अत्यन्त खतरनाक एवं खराब है। यहाँ लूट-खसोट, हत्या आदिके मामले होते ही रहते हैं, इसलिये यहाँ कोई रुकता नहीं। मैंने भी गाड़ी बीस फुट दूर इसीलिये खड़ी की थी। आपके साथ कोई दुर्घटना नहीं हुई, ये बड़े भाग्यकी बात है।’

बेंगलूरु नजदीक आनेपर हमने उनसे कहा कि ‘आप हमें यहीं उतार दीजिये, अब हम चले जायँगे’। किंतु उन्होंने इनकार कर दिया और कहा मैं आपको आपके घर छोड़कर ही जाऊँगा और हमें उन्होंने हमारे घर उल्सूर ही छोड़ा। तब पिताजीने उनको धन्यवाद देते हुए नाम पूछा। तो उन्होंने जो नाम बताया, उससे पता चला कि वे सज्जन एक मुसलिम थे। तब पिताजीने अत्यन्त कृतज्ञतापूर्वक कहा कि ‘हमने खुदाको तो नहीं देखा, पर खुदा आप-

जैसा ही कोई होगा।'—विनोद पुरोहित

(३)

श्वेतकुष्ठनाशक गंगाजल

श्वेतकुष्ठ एक त्वचा रोग है, जो आसानीसे नहीं जाता। इस सम्बन्धमें आयुर्वेदका मत है कि खदिरारिष्टके साथ जो नियमित गंगाजलका कुशल चिकित्सक सेवन करवाता है। वो इस हठी रोगको नष्ट करनेमें समर्थ होता है।

**खदिरारिष्ट-चिकित्सा—‘खदिर भुः कुष्ठघ्ना-
नाम्’** अर्थात् खदिर कुष्ठघ्न है। खदिरारिष्ट कुष्ठादि
चर्मरोगोंके लिये अद्भुत औषधि है। सुपरीक्षित भी है।
मात्रा एवं अनुपान—डेढ़से ढाई तोला बराबर जल
मिलाकर भोजनान्तर दें। प्रातः स्नान करनेके पश्चात्
एक गिलास गंगाजल और सायंकाल एक गिलास
गंगाजल लें। इस चिकित्सा-विधानसे कुष्ठ समूल नष्ट
हो जाता है।

गंगाजल-चिकित्सा—दो तोला नीमकी ताजी छालको कूटकर पावभर जल (गंगाजल)–में डालकर मन्द आँचपर पकायें, एक छटाँक जल शेष रह जाय तो छानकर पी लें। इसी प्रकार सायंकाल भी करें। दीर्घकालतक इसका सेवन करें। सेवनकालमें नमक, लाल मिर्च, लहसुन, प्याज आदि उष्ण पदार्थोंका परहेज करें। यह सिद्धयोग बहुत बारका अनुभूत है। आशातीत लाभ होता है तथा कृष्ठ समूल नष्ट हो जाता है।

आरोग्यवर्धिनी वटी और गंगाजल—वैद्य लोग आरोग्यवर्धिनी वटी १-२ गोली प्रातः-सायं लेनेका योग बताते हैं। जहाँतक मेरे अनुभवमें आया है, गंगाजलके साथ यह वटी ली जाय तो २०० फीसदी लाभकर शरीरको निरोगी बनाती है। यह अनूठा चमत्कार मैंने स्वयं देखा है।

गंगाजलका चमत्कारी प्रभाव—बाबची इस हठी रोगकी प्रसिद्ध दवा है। मेरे पूज्य गुरुने जो चिकित्सा-विधान बतलाया है, उसे लोकहितके लिये यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ। उन्होंने अपने चिकित्सा-विधानमें बताया है कि पहले दिन बाबचीका एक दाना दूसरे दिन दो दाना एक गिलास गंगाजलसे लें अर्थात्

१-१ दाना प्रातः-सायं लें। ऐसे १०० दिनतक लें। पुनः वापस लौटकर १ दानेपर ही आ जायँ। इस प्रकार नियमबद्ध चिकित्सा करनेसे यह भयंकर हठी रोग समूल नष्ट हो जाता है।—शंकरलाल गौड़

$$(\gamma)$$

भगवान्की अन्तर्वाणी

घटना आजसे लगभग साठ वर्ष पहलेकी है। उस समय मैं केन्द्रीय सरकारके एक कार्यालयमें सहायक क्लर्क था। एक दिन अकस्मात् एक पूर्वपरिचित ठेकेदार मेरे पास आये और मुझे सात रुपये देने लगे। मेरे पूछनेपर उन्होंने उत्तर दिया कि वे यह भेंट मुझे मिठाईके लिये दे रहे थे; क्योंकि उनके कामका एक बिल मेरे द्वारा एकाउन्टेन्टक पहुँच गया था। उसी सहायताके उपलक्षमें वे सात रुपये मुझे भेंट देनेके लिये मेरे पास आये थे। मैंने उनसे कहा कि 'यह तो मेरा कर्तव्य था, आपको धन्यवाद; मैं रुपये लेनेका अधिकारी न होते हुए भी, रुपये स्वीकार न कर सकनेके लिये क्षमा चाहता हूँ।' परंतु वे नहीं माने और हठ करने लगे। इसी समय मेरे सहयोगी क्लर्क भी वहाँ आ गये, जो आयुमें मेरे पिताजीसे भी बड़े थे और उनका मैं हृदयसे बड़ा आदर करता था। उनके पूछनेपर मैंने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। इसपर मुझे डाँटकर कहा कि 'तुम मेरे कहनेसे रुपये ले लो, मैंने भी तो ले लिये हैं; तुम व्यर्थ हठ करते हो। इनको लेनेमें कोई पाप नहीं है; क्योंकि ये तुमने पहलेसे तो तय किये नहीं थे। अतः इन्हें ले ही लो।' उनका कहा टालना मैंने उचित नहीं समझा और रुपये ले लिये; परंतु मेरी अन्तरात्मा मुझे फटकार रही थी कि यह तूने अच्छा नहीं किया।

संयोगसे दो ही दिन बाद 'शस्त्रपूर्ण'मा'के अवसरपर मुझे सपरिवार गंगाजी जाना पड़ा। वहाँ पहुँचनेपर प्रथम स्नानार्थ मैं अपने लघु भ्राताको साथ लेकर गंगातटपर पहुँचा तो देखा, जलका प्रवाह तेज था तथा जल भी गहरा था। मुझे अकेले स्नान करनेमें भय प्रतीत हुआ; अतः मैंने अपने छोटे भाईसे कहा कि 'तुम मेरा एक हाथ पकड़ लो और मैं गोते

लगाऊँ।' साबुन लगाकर स्नान करनेकी मेरी सदैवसे ही आदत है, अतः मैंने सारे शरीरमें साबुन लगाया और अपना एक हाथ छोटे भाईके हाथमें पकड़ाकर गोते लगाने लगा। दुर्भाग्यसे मेरा हाथ मेरे भाईके हाथमेंसे फिसल गया, क्योंकि उसमें साबुन लगा था; और साथ ही मेरी अँगुलीमें-से चार मासे सोनेकी अँगूठी निकलकर गंगाजीकी भेंट चढ़ गयी। मैं चिन्तातुर हो उठा और शर्मके मारे काँपने लगा। तुरन्त ही भाईने जाकर पिताजीसे कहा और वे आ गये। उन्होंने आते ही कहा—मैंने पहले ही मना किया था कि गंगाजी या अन्य पवित्र नदियोंमें साबुन लगाकर नहीं नहाना चाहिये; परन्तु तुम नहीं माने और अँगूठी गवाँ बैठे। मैंने उनसे प्रार्थना की कि 'आप क्रोध न करें; मुझे पूर्ण विश्वास है कि अँगूठी मिलकर रहेगी। यदि आप जानते हों तो किसी गोताखोरको बुला दीजिये।' पिताजी तुरन्त घटवालियेके पास गये और उससे कहा कि किसी गोताखोरको बुला दो, अँगूठी मिलनेपर हम प्रसन्न कर देंगे। गोताखोर आया और उसने वह स्थान बतलानेको कहा, जहाँपर मैं स्नान कर रहा था; मैंने वह स्थान बता दिया और उसने लगभग डेढ़ घंटेके परिश्रमके बाद वह अँगूठी ढूँढ़ निकाली। उसने दो रुपये माँगे, जो कि उसे दे दिये गये; और तुरन्त ही पाँच रुपयेका प्रसाद, जो मैंने अँगूठी खोजते समय मनमें धारणा की थी, बाँट दिया।

उसी समय मेरे भीतर अन्तर्वाणी हुई कि 'ये सात रुपये जिस प्रकार आये, उसी प्रकार चले गये, उनका लोभ मत कर।' मैंने भगवान्‌का कोटिशः धन्यवाद किया कि उन्होंने मेरी आँखें खोल दीं और मुझे जीवनमें कुपथके गर्तकी ओर अग्रसर होनेसे सदैवके लिये बचा दिया।

यह मेरे जीवनका प्रथम तथा अन्तिम अवसर था, जब मैंने अपनी अन्तरात्माकी आवाज दबाकर इस प्रकारकी भेंट स्वीकार की हो।

मनन करने योग्य

करत-करत अभ्यासके जड़मति होत सुजान

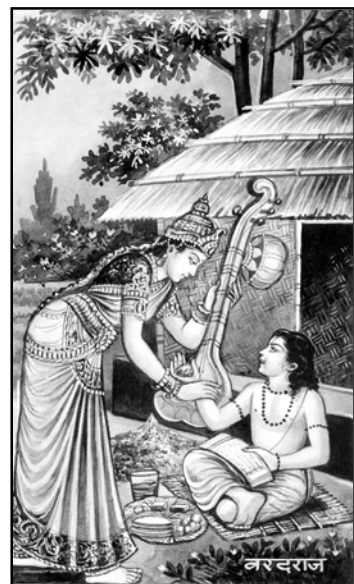
बालक वरदराजका नाम तो कुछ और था; परंतु ही नहीं लगा। मन्दबुद्धि होनेके कारण इनके सहपाठी इन्हें बरधराज (बैलोंका राजा) कहा करते थे। इनकी स्मरणशक्ति इतनी दुर्बल थी कि जितने दिनोंमें एक बड़े घड़ेभर सत्तू खाकर ये समाप्त कर पाते थे, उतने दिनोंमें केवल एक सूत्र इनका कण्ठस्थ होता था। जब ये पाँच वर्षके थे, तभी पढ़नेके लिये गुरुजीके पास आये थे। दस वर्ष बीत जानेपर भी जब ये मूर्ख ही बने रहे, तब अन्तमें एक दिन गुरुजीने निराश होकर कहा—‘बेटा वरदराज! मैंने पूरा प्रयत्न कर लिया; परंतु तुम्हारे भाग्यमें विद्या नहीं जान पड़ती। तुम पढ़ाई छोड़कर घर जाओ और कोई दूसरा काम करो।’

ब्राह्मणके बालकको विद्या नहीं आयेगी, यह बात उन दिनों साधारण नहीं थी। यह तो ब्राह्मणत्वसे गिर जाने-जैसी बात थी। गुरुदेवकी बातसे वरदराजको इतना दुःख हुआ कि उन्होंने विद्याहीन जीवनसे मर जाना श्रेष्ठ समझा। कुएँमें कूदकर प्राण-त्याग करनेके विचारसे वे एक कुएँके पास गये। उन्होंने देखा कि कुएँके ऊपरका जो पत्थर है, उसपर जल खींचनेकी रस्सीकी रगड़के चिह्न बन गये हैं। वरदराजने सोचा—‘जब इतने कठोर पत्थरपर कोमल रस्सीके बार-बार रगड़नेसे चिह्न बन जाता है, तब परिश्रम करनेसे क्या मुझे विद्या नहीं आयेगी?’ वे आत्महत्या करनेका विचार छोड़कर गुरुदेवके पास लौट आये। कुछ दिन और अपने पास रखकर शिक्षा देनेके लिये गुरुदेवसे उन्होंने प्रार्थना की।

वरदराजने अब मन लगाकर पढ़ना प्रारम्भ किया। उनकी लगन इतनी तीव्र थी कि अपने शरीरतकका भी उन्हें ध्यान नहीं रहा। सायंकाल जब वे भोजन करने बैठे, तब भोजन करते समय भी उनकी दृष्टि व्याकरणके पन्नेपर ही थी और वे उसीको स्मरण करनेका प्रयत्न कर रहे थे। उनका हाथ थालीके बदले पास पड़ी राखपर पड़ गया और उसी राखको भोजन समझकर वे उठा-उठाकर खाने लगे। पढ़नेमें उनका इतना ध्यान था कि मुखाम्मुसलाना जोड़कर पढ़ने लगे।

ही नहीं लगा।

जब कोई किसी भी काममें पूरी एकाग्रतासे, सच्चे हृदयसे लग जाता है, तब उसके देवता उसपर अवश्य प्रसन्न हो जाते हैं। उस कार्यमें अवश्य उसे सफलता मिल जाती है। वरदराजकी पढ़नेमें इतनी एकाग्रता देखकर विद्याकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वती प्रसन्न हो



गयीं। उन्होंने प्रकट होकर दर्शन दिया। उनके आशीर्वादसे वरदराज व्याकरण तथा सभी शास्त्रोंके महान् विद्वान् हो गये।

पाणिनीय व्याकरण पढ़नेमें बहुत श्रम होता है, वरदराजको इसका अनुभव था। उन्होंने आरम्भमें विद्यार्थियोंको व्याकरण पढ़नेमें सरलता हो, इस विचारसे ‘लघुसिद्धान्तकौमुदी’ की रचना की। पाणिनीय व्याकरणका संक्षिप्त सारांश इस ग्रन्थमें है।

वरदराजकी घटनासे संस्कृतमें एक लोकोक्ति प्रचलित हो गयी, जिसकी हिन्दीमें भी पद्यके रूपमें बहुत प्रसिद्धि है। जीवनमें उन्नति चाहनेवाले प्रत्येक व्यक्तिके लिये यह लोकोक्ति स्मरण रखनेयोग्य है।

करत करत अभ्यासके जड़मति होत सुजान।

गीताप्रेससे प्रकाशित १७ महापुराण—अब उपलब्ध

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
2223	श्रीशिवमहापुराण (प्रथम खण्ड) सटीक	३२५	1362	श्रीअग्निपुराण—सम्पूर्ण (श्लोकाङ्कसहित) केवल हिन्दी	२६०
2224	श्रीशिवमहापुराण (द्वितीय खण्ड) ”	३२५	44	संक्षिप्त पद्मपुराण ”	२८०
1897	श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण [मतान्तरसे] (प्रथम खण्ड) ”	२५०	1183	संक्षिप्त श्रीनारदपुराण ”	२२०
1898	श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण „(द्वितीय खण्ड) ”	२५०	279	संक्षिप्त श्रीस्कन्दपुराण ”	४२५
26,27	श्रीमद्भागवतमहापुराण (दो खण्डोंमें) ”	६००	1111	संक्षिप्त ब्रह्मपुराण ”	१५०
557	श्रीमत्स्यमहापुराण ”	३००	539	संक्षिप्त श्रीमार्कण्डेयपुराण ”	१००
48	श्रीविष्णुपुराण ”	१५०	1189	संक्षिप्त श्रीगरुडपुराण ”	२००
1432	श्रीवामनपुराण ”	१५०	1361	संक्षिप्त श्रीवराहपुराण ”	१२०
1131	श्रीकूर्मपुराण ”	१५०	631	संक्षिप्त श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण ”	२५०
1985	श्रीलिङ्गमहापुराण ”	२५०	584	संक्षिप्त श्रीभविष्यपुराण ”	२००

श्रीकृष्णजन्माष्टमी एवं श्रीराधाष्टमीपर उपयोगी प्रमुख प्रकाशन

(श्रीकृष्णजन्माष्टमी ११ अगस्त मंगलवारको एवं श्रीराधाष्टमी २६ अगस्त बुधवारको है।)

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
571	श्रीकृष्णलीलाका चिन्तन	२००	343	मधुर	३०	870	गोपाल [चित्रकथा]	१५
49	श्रीराधा-माधव-चिन्तन	१००	526	महाभाव-कल्लोलिनी	१०	871	मोहन „	२०
50	पदरत्नाकर	११०	869	कन्हैया [चित्रकथा]	१५	872	श्रीकृष्ण „	१५

सहस्रनामस्तोत्रसंग्रह (कोड 1594)

प्रस्तुत पुस्तकमें एक साथ श्रीगणपति, श्रीविष्णु, श्रीशिव, श्रीदुर्गा, श्रीसूर्य, श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीलक्ष्मी-नृसिंह, श्रीगोपाल, श्रीराधाकृष्ण, श्रीहनुमान्, श्रीगायत्री, श्रीगङ्गा, श्रीयमुना, श्रीलक्ष्मी, श्रीअन्नपूर्णा, श्रीसीता, श्रीराधिका, श्रीललिता, श्रीभवानी, श्रीदत्तात्रेय, श्रीवक्रतुण्ड-महागणपति—२२ देवी-देवताओंके सहस्रनामावलीसहित सहस्रनामस्तोत्र प्रकाशित किये गये हैं। परमात्मप्रभुकी प्रसन्नताके निमित्त पूजा-अर्चनाके लिये यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य ₹ १३०

सहस्रनामस्तोत्र (नामावलीसहित) अलगसे पॉकेट साइजमें भी

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
1599	श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम्	१०	1664	श्रीगोपालसहस्रनामस्तोत्रम्	१०	1706	श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्	१०
1600	श्रीगणेशसहस्रनामस्तोत्रम्	१०	1665	श्रीसूर्यसहस्रनामस्तोत्रम्	१०	1707	श्रीलक्ष्मीसहस्रनामस्तोत्रम्	१०
1601	श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्रम्	१०	1704	श्रीसीतासहस्रनामस्तोत्रम्	१०	1708	श्रीराधिकासहस्रनामस्तोत्रम्	१०
1663	श्रीगायत्रीसहस्रनामस्तोत्रम्	८	1705	श्रीरामसहस्रनामस्तोत्रम्	१०	1709	श्रीगंगासहस्रनामस्तोत्रम्	८

शतनामस्तोत्रसंग्रह (कोड 1850) पुस्तकाकार—प्रस्तुत पुस्तकमें गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, कृष्ण, दुर्गा आदि विभिन्न देवों और देवियोंके शतनामस्तोत्रों एवं शतनामावलियोंको प्रकाशित किया गया है। भक्तगण इसके माध्यमसे उपासना एवं पूजा करके यथोचित लाभ प्राप्त कर सकते हैं। मूल्य ₹ ३५



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



KAPWING

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित कर्मकाण्डकी प्रमुख पुस्तकें

[२ सितम्बर बुधवारसे पितृपक्ष (महालया) आरम्भ हो रहा है]

नित्यकर्म-पूजा-प्रकाश, सजिल्द (कोड 592)—इस पुस्तकमें प्रातःकालीन भगवत्स्मरणसे लेकर स्नान, ध्यान, संध्या, जप, तर्पण, बलिवैश्वदेव, देव-पूजन, देव-स्तुति, विशिष्ट पूजन-पद्धति, पञ्चदेव-पूजन, पार्थिव-पूजन, शालग्राम-महालक्ष्मी-पूजनकी विधि है। मूल्य ₹ ७० (गुजराती, तेलुगु एवं नेपाली भाषामें भी उपलब्ध)।

अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश (कोड 1593) ग्रन्थाकार—इस ग्रन्थमें मूल ग्रन्थों तथा निबन्ध-ग्रन्थोंको आधार बनाकर श्राद्ध-सम्बन्धी सभी कृत्योंका साङ्गोपाङ्ग निरूपण किया गया है। मूल्य ₹ १४५

जीवच्छ्राद्धपद्धति (कोड 1895)—प्रस्तुत पुस्तकमें जीवित श्राद्धकी शास्त्रीय व्यवस्था दी गयी है, जिसके माध्यमसे व्यक्ति अपने जीवित रहते ही मरणोत्तर क्रियाका सही सम्पादन करके कर्म-बन्धनसे मुक्त हो सके। मूल्य ₹ ७०

गया-श्राद्ध-पद्धति (कोड 1809)—शास्त्रोंमें पितरोंके निमित्त गया-यात्रा और गया-श्राद्धकी विशेष महिमा बतायी गयी है। आश्विन मासमें गया-यात्राकी परम्परा है। प्रस्तुत पुस्तकमें गया-माहात्म्य, यात्राकी प्रक्रिया, श्राद्धका महत्त्व तथा श्राद्धकी प्रक्रियाको सांगोपांग ढंगसे प्रस्तुत किया गया है। मूल्य ₹ ३५

गरुडपुराण-सारोद्धार (कोड 1416)—श्राद्ध और प्रेतकार्यके अवसरोंपर विशेषरूपसे इसके श्रवणका विधान है। यह कर्मकाण्डी ब्राह्मणों एवं सर्व सामान्यके लिये भी अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य ₹ ४०

त्रिपिण्डी श्राद्ध (कोड 1928)—अपने कुल या अपनेसे सम्बद्ध अन्य कुलमें उत्पन्न किसी जीवके प्रेतयोनि प्राप्त होनेपर उसके द्वारा संतानप्राप्तिमें बाधा या अन्याय अनिष्टोंकी निवृत्तिके लिये किया जानेवाला श्राद्ध त्रिपिण्डी श्राद्ध है। इस पुस्तकमें त्रिपिण्डी श्राद्धका सविधि वर्णन किया गया है। मूल्य ₹ २०

सन्ध्योपासनविधि एवं तर्पण बलिवैश्वदेव-विधि (कोड 210) पुस्तकाकार—नित्य सन्ध्या-उपासना एवं तर्पण बलिवैश्वदेवविधिका मन्त्रानुवादके साथ सुन्दर प्रकाशन। मूल्य ₹ ८ [तेलुगुमें भी उपलब्ध]।



booksales@gitapress.org
थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।



gitapress.org
सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।

कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये
गीताप्रेस, गोरखपुर, 273005
book.gitapress.org
gitapressbookshop.in

कल्याणके मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ सकते हैं।